वनस्पति जगत् में ताक-झाँक - 3

जीवजगत् के हमसफर

किशोर पँवार

एकलव्य का प्रकाशन

वनस्पति जगत् में ताक-झाँक – 3

जीवजगत् के हमसफर

किशोर पँवार

एकलव्य का प्रकाशन

जीवजगत् के हमसफर

JEEVJAGAT KE HUMSAFAR

किशोर पँवार

विषय विशेषज्ञः **भोलेश्वर दुबे**

श्रृंखला सम्पादकः **सुशील जोशी**

फोटोः **किशोर पँवार**

चित्रः **भारत जमरा**

आवरण चित्रः **शिशिर सक्सेना**

ले-आउट एवं आवरणः **राकेश खत्री**

जून 2013/3000 प्रतियाँ

कागज़ः 80 gsm मेपलिथो व 220 gsm पेपर बोर्ड (कवर)

पराग इनिशिएटिव, सर रतन टाटा ट्रस्ट व नवजबाई रतन टाटा ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से विकसित

ISBN: 978-93-81300-64-0

मूल्यः ₹ 75.00

प्रकाशकः **एकलव्य**

ई-10, शंकर नगर बी.डी.ए. कॉलोनी,

शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016 (मध्य प्रदेश)

फोनः 0755 - 255 0976, 267 1017

www.eklavya.in / books@eklavya.in

मुद्रकः आदर्श प्राइवेट लिमिटेड, भोपाल, फोनः 0755 - 255 0291

विषय-सूची

प्राक्कथन

पेड़-पौधों और जन्तुओं-कीटों का संसार भी बड़ा विचित्र है। कोई कैसे विश्वास करे कि जो कीट-पतंगे पौधों की पत्तियों को खाते रहते हैं, वे ही कभी पौधे का शिकार हो जाते हैं। यह प्रक्रिया और उसका अनुक्रम आश्चर्यजनक है।

फफूँद भी कम दिलचस्प नहीं होतीं कभी भी कहीं भी उग जाती हैं। कभी मृत जीवों पर उगकर उसका विखण्डन-विच्छेदन कर उसे पंचतत्व में विलीन कर देती हैं तो कभी मशरूम और खमीर के रूप में मानव जाति के लिए उपयोगी प्रमाणित होती हैं। परपोषियों के जीवन का आधार भले ही शाकाहार हो, उनका भी काम सूक्ष्मजीवियों के बिना नहीं चलता। वस्तुतः उनका जीवन तो ये ही चलाते हैं। अमरबेल जैसे कुछ पौधे पीले रहकर भी अन्य हरे पेड़-पौधों का रस चूसकर अपना जीवनयापन करते हैं। पुस्तक में एक रोचक तथ्य मोनार्क और वाइसरॉय तितली का है और उसी में बन्दरों द्वारा कीटों के भक्षण का है।

पूरी पुस्तक जीव-जन्तुओं और वनस्पति जगत् की 'अन्तर्गाथा' कहती प्रतीत होती है। सायनोबैक्टीरिया फूलधारी पौधों के जीवन का एक शाश्वत सत्य है, जहाँ वे पौधे के नाइट्रोजन की पूर्ति का साधन बनते हैं। 'गोबर गाथा' की आभा भी गूलर गाथा से कम नहीं है। गोबर के पैदा होने से लेकर उसके सड़ने की पूरी प्रक्रिया निश्चित क्रम दर्शाती है जो सूक्ष्मजीवियों के अनुक्रमण का एक श्रेष्ठ प्राकृतिक उदाहरण है।

एक अत्यन्त ही रोचक एवं आश्चर्यजनक सूचना प्रदाय करने वाला लेख है कि क्या क्लोरोप्लास्ट और माइटोकॉण्ड्रिया पौधों की कोशिकाओं में उम्र कैद काट रहे हैं? यह लेख प्रकृति में जीवों के क्रमिक विकास का एक अनुपम उदाहरण है। यह जीव विज्ञान एवं प्रकृति के क्रियाकलापों में रुचि रखने वाले विद्यार्थियों के लिए पठनीय एवं विचारणीय है।

यह पुस्तक रोचक, ज्ञानपूर्ण और सामान्य जन में विज्ञान की समझ बढ़ाने और जीवन की निरन्तरता को स्थापित करने का एक प्रयास है। प्रकृति के विभिन्न जुगाड़ों का एक सुन्दर झरोखा है। वास्तव में डॉ. किशोर पँवार वनस्पतिशास्त्री होने के साथ पर्यावरणविद् हैं। उनकी लेखनी में वैज्ञानिक साहित्य लेखन की अपार क्षमता है। उनकी दृष्टि पैनी है और उनका लेखन मज़बूत।

लेखक बधाई के पात्र हैं।

प्रेमशंकर दुबे
प्रोफेसर, पूर्व विभागाध्यक्ष
पर्यावरण प्रबंधन एवं पादप विज्ञान संस्थान,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, म.प्र.

भूमिका

प्रकृति में कहीं भी कोई भी जीव अकेला नहीं रहता। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वह अन्य छोटे-बड़े जीवों से घिरा रहता है। हमारी ही तरह जीवों के समुदाय होते हैं, जिन्हें वैज्ञानिक 'कम्यूनिटी' कहते हैं। जब समान या विभिन्न प्रकृति के जीव अपने प्राकृतिक परिवेश में साथ रहते हैं, तब उनमें मेल-जोल या लड़ाई-झगड़ा होना स्वाभाविक है। इन जीवों में प्रायः भोजन एवं स्थान आदि के लिए प्रतिस्पर्धा होती रहती है। ऐसी ही स्पर्धा प्रजनन के लिए भी होती है, जिसे चार्ल्स डार्विन ने लैंगिक चयन नाम दिया था।

इस जगत् में एक जीव दूसरे जीव का शिकार करता है, अपने भरण-पोषण के लिए। हरे पौधे तो अपना भोजन स्वयं बनाते हैं परन्तु जन्तुओं में यह क्षमता नहीं पाई जाती। ये परपोषी विभिन्न तरीकों से अपने भोजन का जुगाड़ करते हैं। इसी जुगाड़ का एक तरीका शिकार है।

सवाल यह है कि क्या पौधों का भी शिकार होता है? बिलकुल, उन्हें कुतरने, चरने और उखाड़कर पूरा का पूरा चट कर जाने वाली इल्लियाँ, टिड्डे, खरगोश, बन्दर और जंगली सूअर यही तो करते हैं। इसी क्रम में कभी-कभी शिकारी भी शिकार हो जाता है। जैसे पत्ती का शिकार करने वाले टिड्डे चिड़ियाओं का भोजन बन जाते हैं, चिड़ियाएँ, बिल्लियों और बाज़ का शिकार हो जाती हैं। प्रकृति में शिकार करने और शिकार हो जाने का यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। पर्यावरण विज्ञान में इसे भोजन श्रृंखला या भोजन जाल कहते हैं। शिकार और शिकारी की यह आँख-मिचौली जीवन का एक शाश्वत सत्य है। किसी भी जीव के लिए यह ज़रूरी हो जाता है कि वह अपनी भोजन व्यवस्था के साथ अपने शिकारी से बचने के माकूल उपाय भी करे। अन्यथा उसका अस्तित्व संकट में पड़ जाएगा।

पौधों की सुरक्षा की कुछ बानगियाँ इस पुस्तक में प्रस्तुत की गई हैं। जैसे किस प्रकार एक नन्ही-सी चींटी बड़े-बड़े बबूल के पेड़ों की रक्षा करती है। किस तरह से स्वयं पौधों द्वारा उत्पादित विशिष्ट रसायन उन्हें शिकारी जीवों से सुरक्षित रखे जाने में अहम भूमिका निभाते हैं। और तो और पौधे अपनी रक्षार्थ खतरनाक ज़हरीले जीवों का स्वांग तक धरते हैं। ये कुछेक उदाहरण हैं जिनसे पौधों और जीव-जन्तुओं के आपसी सम्बन्ध

के बारे में हम जान पाते हैं। विष उत्पादन या रूप धारण न केवल आत्मरक्षा के उपाय हैं बल्कि इन तमाम व्यवस्थाओं के ज़रिए अपने जीवन की समाप्ति के पूर्व ये जीव प्रजनन कर संसार में अपनी प्रजाति की निरन्तरता के लिए सन्तति छोड़ने की कोशिश करते हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न जैव प्रजातियाँ बहुत करीबी रिश्ते बना लेती हैं। एक ओर जहाँ जीव-जीव का भक्षक है, वहीं यह रक्षक की भूमिका भी निभाता है। तभी तो पौधों को एक ओर कुतरने वाले, चरने वाले जीवों से खतरा है, वहीं कीटों से ही प्रजनन की महत्वपूर्ण प्रक्रिया पूर्ण होती है। इसका उल्लेख और विस्तार पूर्व में प्रकाशित पुस्तक *फूल से बीज तक* में हो चुका है।

इन पेड़-पौधों और जन्तुओं से यह तो सीखा ही जा सकता है कि सुख हो या दुख, कैसे एक-दूसरे का साथ दें। जैसे कभी-कभार फूलों पर मँडराते भँवरे और तितलियाँ जो मकरन्द पान कर स्वयं तृप्त हो जाती हैं और परागण कर पुष्प को प्रजनन में मदद करती हैं। या जीवन भर क्लोरोप्लास्ट और माइटोकॉण्ड्रिया को ही देखें जो कोशिका के अभिन्न अंग बन एकाकार हो गए हैं, जैसे वे इससे अलग कभी रहे ही न हों।

कुल मिलाकर परस्पर सम्बन्ध ही जीवन का सार है। जहाँ भी रहें जिन परिस्थितियों में रहें, साथ-साथ रहें। यह पुस्तक जीवजगत् के विभिन्न क्रिया-कलापों में से उनके एक महत्वपूर्ण आयाम को समझने की चेष्टा भर है। विश्वास है आपको यह अच्छी लगेगी।

किशोर पँवार

पापी पेट के लिए परपोषियों की रणनीतियाँ

सभी जीवों को ज़िन्दा रहने के लिए भोजन की ज़रूरत होती है। विभिन्न प्रकार के जीव अपना भोजन अलग-अलग तरीकों से प्राप्त करते हैं। इस आधार पर जीवों को दो प्रमुख समूहों – स्वयंपोषी और परपोषी – में बाँटा गया है। पहले समूह में सभी हरे पेड़-पौधे आते हैं। ये अपना भोजन अकार्बनिक पदार्थों जैसे कार्बन डाईऑक्साइड, पानी और खनिज लवण से बनाते हैं। यह कार्य वे सूर्य से प्राप्त प्रकाश ऊर्जा की मदद से करते हैं। एक तरह से देखें तो पौधे विकिरण ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में बदल देते हैं। ऊर्जा परिवर्तन का यह कार्य हरे पदार्थ क्लोरोफिल की उपस्थिति में होता है। इनसे बनने वाला भोजन शर्करा, प्रोटीन और वसा के रूप में रहता है।

दूसरी तरफ इस दुनिया में नाना प्रकार के जीव-जन्तु हैं, बैक्टीरिया और तरह-तरह की फफूँदें हैं, जो अपने पोषण के लिए हरे पौधों द्वारा बनाए गए पदार्थों पर निर्भर रहते हैं। अतः इन्हें परपोषी कहा जाता है; यानी भोजन के लिए दूसरों पर आश्रित।

मैना

शाकाहारी

परपोषियों का पहला प्रकार है भेड़, बकरी, गाय, हिरण, खरगोश आदि। ये सीधे वनस्पतियों को खाकर अपना पोषण ग्रहण करते हैं। इन्हें शाकाहारी कहा गया है। कुछ शाकाहारी जीव तो पौधे के केवल पत्ते ही खाते हैं। इन्हें पत्तीभक्षी (फोलीवोर्ज़) कहते हैं। इनमें भी जो घास खाते हैं उन्हें चरने वाले (यानी ग्रेज़र्ज़) और जो पेड़ों की पत्तियाँ और कोमल शाखाएँ और फल खाते हैं उन्हें कुतरने वाले (यानी ब्राउज़र्ज़)

कहते हैं, जैसे बकरी और ऊँट। अधिकांश पक्षी केवल बीज या फल खाते हैं, अतः उन्हें दानाभक्षी (ग्रेनीवोर्ज़) नाम दिया गया है। ये सब शाकाहारी हैं।

घास से घिसते दाँत

घास खाकर पेट भरने के फायदों के साथ खतरे भी हैं। कई बार घास की पत्तियों में रेत के बहुत बारीक कण होते हैं जो चरने वाले जन्तुओं के दाँतों को घिसते रहते हैं। देखा गया है कि यदि कोई शाकाहारी पशु मांसाहारियों के शिकार होने से बचकर लम्बी उम्र जिए, तो उनके दाँत इतने घिस जाते हैं कि वे बेकार हो जाते हैं और वे पशु भूख से मर जाते हैं। यह ठीक वैसा ही मामला है जैसे अनाज पीसने वाली चक्कियों के पाट घिसते रहते हैं और समय-समय पर उनकी टँकाई करते रहना पड़ता है।

देखा गया है कि विकास के दौरान ऐसे जीवों का चयन ज़्यादा हुआ है जिनके दाँतों की घिसने वाली सतहें खराब होने से बच पाई हैं। कई कुतरने वाले जीवों के दाँत जीवन भर बढ़ते रहते हैं। चूहों के साथ ऐसा ही होता है। इसलिए उन्हें कुछ न कुछ कुतरते रहना पड़ता है ताकि दाँत ज़्यादा बड़े न होने पाएँ।

हाथियों ने दाँत घिसने की समस्या को बड़े ही उल्लेखनीय तरीके से सम्हाला है। जीवन के प्रारम्भिक काल में वे केवल चार घिसने वाले दाँतों का ही इस्तेमाल करते हैं। जब ऊपर व नीचे के जबड़े के दाँत घास-फूस की कारगुज़ारी के कारण घिस जाते हैं तो पिछले दाँत उनका काम सम्हाल लेते हैं। इस तरह से हाथी बारी-बारी से अपने दाँतों का इस्तेमाल करते हैं। जो हाथी साठ वर्ष की उम्र का हो जाता है वह अपने सभी चौबीस दाँतों को इस तरह उपयोग में ला चुका होता है।

मांसाहारी

परपोषियों का दूसरा प्रकार ऐसे जन्तुओं का है जो शाकाहारी जन्तुओं को अपना भोजन बनाते हैं। जैसे शेर, चीता और लोमड़ी। ये अपने शिकार को बड़े-बड़े टुकड़ों में तोड़कर उसका भक्षण करते हैं। इन्हें मांसाहारी कहा गया है। शाकाहारी और मांसाहारी के बीच की भी एक श्रेणी है, जैसे मनुष्य और सुअर। ऐसे जन्तु मिश्रित भोजन करते हैं। इन्हें सर्वभक्षी या सर्वाहारी नाम दिया गया है।

परजीवी

माहू

http://foter.com/Aphidoidea/

परपोषियों की एक श्रेणी है – परजीवी। ये ऐसे जीव हैं जो अपना पोषण दूसरे जीवों से उनकी जीवित अवस्था में ही प्राप्त करते हैं। इनका जीवनकाल भी कम होता है। ये अधिकतर अपना भोजन तरल रूप में प्राप्त करते हैं। जैसे खटमल मनुष्य से खून प्राप्त करता है और माहू पौधों के तनों से रस चूसता है। खटमल और माहू परजीवी हैं। एक जन्तुओं पर आश्रित है तो दूसरा पौधों पर। इसी श्रेणी में कुछ फफूँदों को भी रखा गया है। जैसे गेहूँ पर गेरुआ रोग फैलाने वाला पक्सिनिया और नींबू पर भूरा धब्बा रोग फैलाने वाला बैक्टीरिया जेंथोमोनास।

मृतजीवी

परपोषी जीवों की एक और जमात है जो सड़े-गले मृत पदार्थों से अपना भोजन प्राप्त करती है। ये या तो अपना भोजन घोल के रूप में चूसते हैं या छोटे-छोटे टुकड़ों में खाते हैं। इन्हें मृतजीवी कहा जाता है। जैसे कुछ फफूँद, बैक्टीरिया और मक्खी। मक्खी अपना भोजन तरल पदार्थ के रूप में अपने मुँह से स्पंज की तरह चूसती है।

वे जन्तु जो मृत जीवों से अपना भोजन ठोस रूप में ग्रहण करते हैं अपमार्जक कहलाते हैं। जैसे लकड़बग्घा, गिद्ध, चील और कौआ। हालाँकि ये अपने भोजन का एक बड़ा हिस्सा शिकार को मारकर भी प्राप्त करते हैं। अतः ये मांसाहारी शिकारी भी हैं और मांसाहारी अपमार्जक भी।

दरअसल समस्या तब पैदा होती है जब हम प्रकृति को अपने हिसाब से बाँटने की कोशिश करते हैं। सजीवों को उनके पोषण के आधार पर वर्गीकृत करना एक ऐसा ही मामला है।
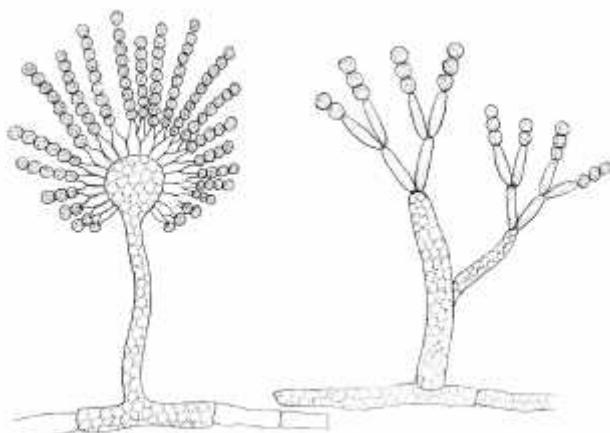
एसपरगिलस पेनिसिलियम

कवक फफूँद

वैसे तो मोटे तौर पर यह आसान है, परन्तु कुछ जीव ऐसे भी हैं जिन्हें सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। जैसे कुछ परजीवी ऐसे भी होते हैं जिनके पोषकों की मृत्यु के पश्चात् वे उन मृत शरीरों पर मृतजीवी की तरह जीवनयापन करने लगते हैं। जैसे कई फफूँद।

वर्गीकरण की कोशिशें तब और भी मुश्किल हो जाती हैं जब हम कुछ विशेष प्रकार के पौधों की बात करते हैं। हालाँकि अधिकांश पौधे स्वपोषी होते हैं, परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो परजीवी हैं जैसे *अमरबेल* तथा *ओरोबेंकी*।

जड़ परजीवी - ओरोबेंकी पोषक की जड़ों से लगा हुआ

ओरोबेंकी ज़मीन के अन्दर भूमिगत जड़ तंत्र के रूप में रहता है जो किसी दूसरे स्वपोषी पौधे की जड़ से जुड़ा रहता है। यह वहाँ से शर्करा और अन्य पोषक पदार्थ घोल के रूप में प्राप्त करता रहता है। ज़मीन के ऊपर इसका सिर्फ भूरा जामुनी फूलों का गुच्छा ही आता है जिनका परागण कीटों की सहायता से होता है। यानी पौधा मुख्य रूप से भूमिगत ही रहता है।

कुछ पौधे ऐसे भी हैं जो अमरबेल की तरह क्लोरोफिल विहीन नहीं हैं। फिर भी परजीवी की तरह इनकी जड़ें दूसरे पेड़ों की जड़ों से जुड़ी रहती हैं। अब इन्हें क्या कहा जाए! चलिए आंशिक परजीवी कह लेते हैं। खुशबू फैलाता चन्दन और आँखों की दवाई का आधार आईब्राइट इसी श्रेणी में आते हैं। यह भी सम्भव है कि पेड़-पौधों की और कई प्रजातियाँ आंशिक परजीवी हों। क्योंकि पौधों का पूरा जड़ तंत्र खोदना कोई आसान काम नहीं है।

इस काम में सबसे ज़्यादा परेशानी तो तब आती है जब हम कीटभक्षी पौधों की बात करते हैं। जैसे *ड्रॉसेरा* और *पिचर प्लांट* आदि। *ड्रॉसेरा* तो सचमुच अपने शिकार को बिलकुल जन्तुओं की तरह पकड़ता है। इन पौधों में कीट का पाचन पौधों की बाहरी सतह पर स्रावित एन्ज़ाइम से होता है। शिकार का पाचन होने पर घुलनशील पदार्थ इन शिकारी पौधों द्वारा सोख लिए जाते हैं।

कुछ मामलों में तो शिकार का पाचन शुरू होने के पहले ही उसकी मृत्यु हो चुकी होती है। मगर दूसरी तरफ किसी-किसी मामले में ऐसा भी होता

है कि जिस कीट का शिकार किया गया है वह अभी जीवित ही है और उसका पाचन भी शुरू हो जाता है। यह घटना तो बाहरी परजीवी प्रकार की हुई, जहाँ परजीवी पौधा एक ज़िन्दा शिकार को पकड़कर उसे अपना भोजन बनाता है। यहाँ यह ध्यान रखना है कि ये कीटभक्षी पौधे हरे हैं और इनकी पत्तियाँ प्रकाश संश्लेषण से अपना भोजन बनाती हैं। अर्थात् ये आंशिक परपोषी हुए। घूम गया ना दिमाग।

पिचर प्लांट

एक ही बात आसान लगती है कि परपोषी अपना भोजन स्वयं नहीं बनाते, किसी और से प्राप्त करते हैं। मगर यह भोजन प्राप्त करने के लिए उन्हें काफी पापड़ बेलने पड़ते हैं। नाना प्रकार की रणनीतियाँ अपनाई जाती हैं। सवाल पेट भरने का जो है!

✦✦
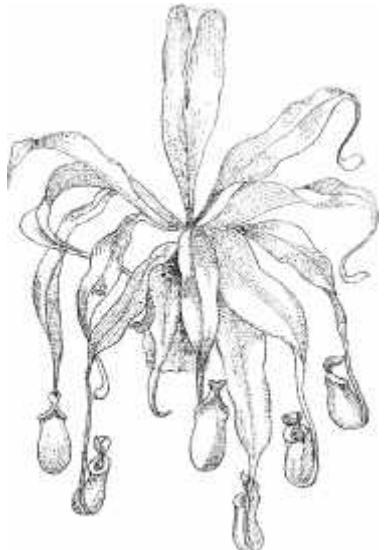
परजीवियों का कुनबा: सेन्टेलेल

वैसे तो पौधों का परजीवी होना ही अपने आप में अपवाद है। जिन पौधों के भरोसे समस्त जीवधारी अपना जीवन चलाते हों, उन्हीं को अपने भोजन-पानी के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़े, यह क्या कम है! पर प्रकृति ऐसी ही विचित्रताओं और रोचक संयोगों का नाम है। अपवादस्वरूप एक-दो परजीवी पौधे किसी कुल में आ जाते हैं – जैसे *मॉर्निंग ग्लोरी* कुल में अमरबेल (*Cuscuta*)। परन्तु सेन्टेलेल की तो बात ही अलग है। इस वर्ग में शामिल कुलों – *सेन्टेलेसी*, *लोरेन्थेसी, विस्केसी* व *बेलेनोफोरेसी* – के सभी पौधे परजीवी हैं।

जीवों का वर्गीकरण हालाँकि एक विशुद्ध मानवीय गतिविधि है। परन्तु फिर भी क्या यह संयोग कम है कि इस समूचे कुनबे में परजीवियों की भरमार है? लक्षणों में आपसी समानता के कारण ही ये एक जगह इकट्ठा हो गए हैं। इनमें से कुछ आंशिक रूप से परजीवी हैं, जैसे चन्दन। इसके विभिन्न उत्पादों का उपयोग 1700 ईसा पूर्व मिस्र में होता था। सुदूर पूर्व में तो इसका उपयोग और भी पुराना है। हमारे यहाँ इसकी लकड़ी और तेल का उपयोग साबुन, अगरबत्ती, धूप और अन्य सुगन्धियों में हज़ारों वर्षों से होता आया है। हिन्दू, बौद्ध, पारसी और मुसलमानों में चन्दन की लकड़ी का उपयोग अन्तिम संस्कार में किया जाता है। पारसियों के लिए तो चन्दन और ज़्यादा महत्वपूर्ण है। उनकी पूजा के दौरान चन्दन की लकड़ी को अग्नि को समर्पित किया जाता है।

http://www.sciencephoto.com/media/28372/view

चन्दन की ही तरह *विस्कम एल्बम* का उपयोग इंग्लैंड की प्राचीन केल्ट जाति के पुरोहितों द्वारा कई रीति-रिवाज़ों में किया जाता था। इसकी झलक आज भी वहाँ के लोकगीतों में मिलती है। क्रिसमस मिस्ट्लटो के रूप में इसकी महत्ता

काफी समय से है। अमेरिका में इसी कार्य के लिए इससे मिलते-जुलते एक अन्य परजीवी *फोरेडेन्ड्रॉन सेरोटीनम* को इसके विकल्प के रूप में अपनाया गया है।

यूरोप से परजीवी मिस्ट्लटो (*विस्कम*) की शाखों को एकत्रित कर क्रिसमस से एक सप्ताह पूर्व जहाज़ द्वारा बड़े-बड़े शहरों में भेजा जाता है। उत्तरी अमेरिका में आर्थिक रूप से उपयोगी मिस्ट्लटो को टेक्सास, न्यू मेक्सिको और ओक्लाहामा से एकत्रित किया जाता है।

सेन्टेलेल वर्ग में 18 मीटर ऊँचे पेड़ों से लेकर पुष्पीय पौधों में सबसे छोटे *आरसीयूथोबियम मायनूटीसीमम* तक शामिल हैं। इस बौने मिस्ट्लटो का तना पोषक पौधे से केवल 3 मिलीमीटर बाहर निकला रहता है। इनके परजीवी होने का पुख्ता प्रमाण है इनमें चूषक जड़ों का पाया जाना। ये विशेष रचनाएँ पोषक पौधे के शरीर में घुसकर अपने पौधे के लिए विभिन्न प्रकार के पोषक पदार्थ पहुँचाती हैं।

परजीविता की हद प्रत्येक प्रजाति में अलग-अलग है। अधिकांश आंशिक परजीवी प्रजातियों में क्लोरोफिल होता है, जैसे चन्दन में। परन्तु *बेलेनोफोरेसी* व *सीनोमोरेसी* कुल के पौधों में क्लोरोफिल नहीं होता। अतः ऐसे कुल के पौधे पोषण के लिए पूर्ण रूप से अपने पोषक पर आश्रित रहते हैं। इस दिशा में रेडियोसक्रिय आइसोटोपों द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चला है कि पत्तीदार परजीवियों (जैसे *फोरेडेन्ड्रॉन* व *लोरेन्थस*) की बजाय छोटे, पत्ती रहित पौधे (जैसे बौने मिस्ट्लटो) अपने पोषक पौधों पर ज़्यादा आश्रित रहते हैं। ज़्यादा विकसित परजीवियों में चूषक जड़ें पोषक के अन्दर बहुत गहरे तक चली जाती हैं। *विस्केसी* कुल में ऐसा अक्सर देखा गया है। परजीवी बौने मिस्ट्लटो शंकुधारी पोषक पेड़ों के पूरे शरीर के अन्दर धागेनुमा तंत्र बना लेते हैं जो पेड़ के शीर्ष तक पहुँच जाता है। पोषक इस व्यापक आक्रमण के प्रत्युत्तर में विचेज़ ब्रूम जैसे लक्षण उत्पन्न करता है। ऐसे में पेड़ का पूरा शीर्ष पतली-पतली शाखाओं के कारण झाड़ूनुमा दिखाई देता है।

विचेज़ ब्रूम

http://www.wqed.org/birdblog/2011/10/

यद्यपि इस वर्ग के अधिकांश

सदस्य परजीवी हैं परन्तु सबसे ज़्यादा आर्थिक हानि मिस्ट्लटो के कारण होती है। यह कोको, रबर, नारंगी, सन्तरा और नींबू के पेड़ों पर रोग फैलाता है। क्रिसमस मिस्ट्लटो सजावटी पौधों का रूप बिगाड़ देता है जिससे उनकी कीमत कम हो जाती है। बौने मिस्ट्लटो की कुछ प्रजातियाँ दक्षिणी अमेरिका में चीड़ व अन्य शंकुधारी पौधों को बहुत नुकसान पहुँचाती हैं।

हमारे यहाँ *डेन्ड्रोफ्थी* और *विस्कम* आम, अमरूद व शिरीष के पेड़ों को काफी हानि पहुँचाते हैं। ज़्यादा संक्रमण होने पर आम के पेड़ों की मृत्यु तक हो जाती है।

पोषक पर लगा लोरेन्थस

http://www.flickr.com/photos/soltenviva/456487010/

जंगलों में इनका फैलाव मुख्य रूप से पक्षियों द्वारा होता है। इनके फल रसीले होते हैं। रोमन समय से ही लोगों को पता था कि पक्षियों और मिस्ट्लटो के बीच एक खास रिश्ता है। इसके रसीले फलों को कई पक्षी बड़े चाव से खाते हैं। बीज इनकी आहार नाल से सुरक्षित निकल आते हैं। जब इनकी विष्ठा पेड़ों की शाखाओं या तनों पर गिरती हैं तो बीज वहीं उगकर एक नए पोषक पर जम जाते हैं। चन्दन के पौधे भी अपने बिखराव के लिए मैना जैसे पक्षियों पर आश्रित हैं।

कुछ मिस्ट्लटो के बीज पंखदार या रोएँदार होते हैं जो हवा में उड़कर पेड़ों की शाखाओं पर चिपक जाते हैं। बीज बिखराव का सबसे ज़बर्दस्त तरीका तो बौने मिस्ट्लटो में देखा गया है। इसका फल विस्फोटक होता है। पकने पर इसमें काफी ज़्यादा हाइड्रोस्टेटिक दबाव उत्पन्न हो जाता है। इसके फटने पर बन्दूक की गोली के आकार के इसके चिपचिपे बीज तेज़ी से 15 मीटर की दूरी तक हवा में बिखर जाते हैं। इनकी शुरुआती गति 100 किलोमीटर प्रति घण्टा होती है। इस तरह इसके बीज नए पोषक पौधों की शाखों पर चिपक जाते हैं और वहीं पर जम जाते हैं। अर्थात् उगकर नया पौधा बनाते हैं।

✦✦

आसान नहीं है भोजन चुराना

जी हाँ, यह बात सौ फीसदी सच है। पौधों के लिए जितना आसान है भोजन बनाना, उतना ही मुश्किल है भोजन चुराना। इसके लिए अपनी जड़ों, पत्तियों, फूलों और दूसरे सूक्ष्मजीवों की मदद भी लेनी पड़ती है, साथ ही और भी कई पापड़ बेलने पड़ते हैं।

अपने दम पर हवा, पानी और धूप से भोजन बना लेने वाले हरे पेड़ों की दुनिया में कुछ ऐसे भी पौधे हैं जिनमें अन्यान्य कारणों से खुद का भोजन बनाने का इन्तज़ाम नहीं होता। मसलन भोजन बनाने के लिए चाहिए पानी व खनिज सोखने वाली जड़ें, क्लोरोफिल-युक्त हरी पत्तियाँ व अन्य हिस्से और सूर्य का प्रकाश। यदि इनमें से किसी भी एक का अभाव हो तो ज़ाहिर है भोजन बनाना सम्भव न होगा।

मान लीजिए कि आपके घर में दाल, चावल, आटा, नमक, मिर्च तो है पर बरतन नहीं हैं। तो खाना बनेगा किसमें? यदि बरतन भी हैं परन्तु लकड़ी या गैस अर्थात् ऊर्जा नहीं है, तो भोजन पकेगा कैसे? कारण जो भी हो, ऐसा ही कुछ पौधों के साथ हुआ है। किसी के पास पत्तियाँ तो ढेर सारी हैं परन्तु काबिल जड़ें नहीं हैं जो मिट्टी से पानी व खनिज लवण सोख सकें। जैसे चन्दन और चीड़ के पेड़। अमरबेल जैसी कुछ वनस्पतियाँ ऐसी भी हैं जिनके पास न तो पत्तियाँ हैं और न ही जड़ें। तो भला बात बने तो कैसे?

परन्तु ये पौधे हैं कि हिम्मत नहीं हारते या फिर यूँ कहिए कि इनका विकास कुछ इस तरह हुआ है कि किसी न किसी तरह ये अपना भोजन हासिल कर ही लेते हैं। इसके लिए इनमें तरह-तरह के उपाय विकसित हुए हैं। भोजन के चक्कर में तरह-तरह के सम्बन्ध जोड़ने होते हैं। इन सम्बन्धों को मज़बूत बनाने और भोजन चुराने के लिए नए-नए अंग विकसित हुए हैं इनमें। आइए ऐसे ही कुछ उपायों का जायज़ा लिया जाए। शुरुआत करते हैं हमारे चिर परिचित पेड़ चन्दन से।

चन्दन यानी उधार की खुशबू

सौंधी-सौंधी सुगन्ध देने वाला चन्दन का पेड़ आंशिक रूप से परजीवी है। इसमें बाकायदा सामान्य रंग-रूप की हरी पत्तियाँ होती हैं। 30-40 फीट ऊँचा सदा हरा रहने वाला यह पेड़ पत्तियों की बदौलत प्रकाश संश्लेषण के द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाने में सक्षम है। परन्तु इस काम में लगने वाला पानी व खनिज लवण इसे दूसरे पेड़ों की मदद से प्राप्त करने पड़ते हैं।

शुरुआती ज़िन्दगी का पहला साल तो चन्दन का पौधा खुद अपने दम पर पानी व लवण खींच लेता है। परन्तु इसके बाद ज़िन्दा रहने के लिए यह शीशम, शिरीष, यूकेलिप्टस, रीठा, बबूल, करंज, साल, हर्रा, खैर और अर्जुन जैसे पेड़ों से नाता जोड़ता है। चन्दन की जड़ें ज़मीन के अन्दर ही अन्दर पोषक पेड़ों से जा चिपकती हैं। चिपकने का काम कुछ विशेष प्रकार की चूषक जड़ें करती हैं जिन्हें चूषकांग (*हॉस्टोरिया*) कहते हैं। चन्दन एक आंशिक जड़-परजीवी है क्योंकि शेष भोजन इसकी पत्तियाँ बनाती ही हैं। चूँकि चन्दन में खुशबू इसके परिपक्व होने पर ही आती है जिसमें अन्य पेड़ों का भी योगदान रहता है, अतः इसकी खुशबू उधार की हुई ना! चन्दन की लकड़ी बहुत महत्वपूर्ण होती है और कई धार्मिक अनुष्ठानों में काम आती है। इसकी महत्ता का अन्दाज़ा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि इसकी तस्करी भी खूब होती है।

चन्दन के फूल
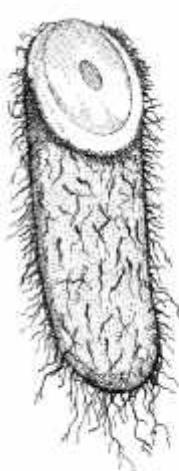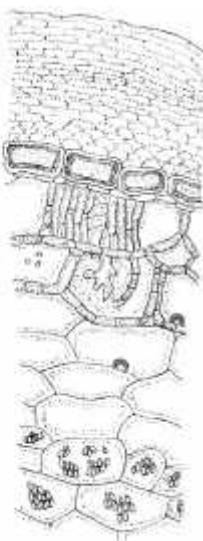
चीड़: सहारे की ज़रूरत

प्रकृति में सूक्ष्म और विशाल के बीच पनपा एक अनूठा रिश्ता है मायकोराइज़ा (मायकोस यानी फफूँद और राइज़ा यानी जड़)। पोषण के लिए यह सम्बन्ध ऊँचे-ऊँचे विशालकाय चीड़, ओक व बर्च और सूक्ष्म फफूँद के बीच बनता है। इन पेड़ों की जड़ों में अन्य पौधों की तरह मिट्टी से पानी व खनिज लवण सोखने वाले मूल रोम नहीं होते। ऐसी स्थिति में इन ऊँचे पेड़ों के लिए एक बड़ी समस्या यह होती है कि ज़मीन से पानी कैसे सोखा जाए। इसका निराकरण सूक्ष्म फफूँदों की सहायता से किया जाता है। वैसे फफूँदों को भी अपने भोजन का कुछ हिस्सा इन पेड़ों से मिलता रहता है।

बड़े पेड़ व लघु फफूँद का यह सम्बन्ध दो तरह का होता है। कुछ पेड़ों की जड़ों पर यह बाहरी आवरण (*एक्ज़ो*) के रूप में रहती है, जैसे चीड़ और ओक। जबकि मैपल में यह जड़ों के अन्दर (*एंडो*) ही अपना डेरा जमा लेती है। जड़-फफूँद सम्बन्ध में जो फफूँदें जड़ से चिपकी रहती हैं उनके नाम हैं – *सीनोकोकम, जीऐस्ट्रम व स्क्लेरोडर्मा*।

अमरबेलः एक नहीं, हज़ार जड़ें

कस्क्यूटा रिफ्लेक्सा

http://www.parasiticplants.siu.edu/Cuscutaceae/

अमरबेल का तो नाम ही रोचक है। यह बिना जड़ की एक हरी-पीली, बिना पत्ती की, मोटी धागेनुमा बेल है। यदि इसे तोड़कर दूसरे पौधों पर डाल दें तो यह वहाँ भी अपना डेरा जमा लेती है। इसका बंगाली नाम स्वर्णलता इसके सुनहरे रूप की ओर इशारा करता है। संसार में इसकी लगभग 180 प्रजातियाँ मिलती हैं। हमारे यहाँ *कस्क्यूटा रिफ्लेक्सा* और *कस्क्यूटा चाइनेन्सिस* प्रजातियाँ सामान्यतः देखी गई हैं। इस पौधे के पास न तो पत्तियाँ हैं, न ही ज़मीन से जोड़ने वाली जड़। अतः भोजन न बना पाने की स्थिति में इसे भोजन चुराना ही पड़ता है।

अमरबेल एक पूर्ण परजीवी बेल है जिसे अपना भोजन पूरी तरह से पोषक पौधों से प्राप्त करना पड़ता है। हालाँकि इसमें ज़मीन से जोड़ने वाली मुख्य जड़ नहीं है परन्तु इसके तने से जगह-जगह पर विशिष्ट प्रकार की हज़ारों चूषक जड़ें निकलती हैं। ये चूषक जड़ें इसे पोषक के तने से चिपकाए रखती हैं, और वहाँ से बना-बनाया भोजन प्राप्त करती रहती हैं।

अमरबेल की विभिन्न स्थितियाँ

अमरबेल को अमर बनाने में इन खूँटे के समान जड़ों का विशेष योगदान है। इन जड़ों के सिरों पर उँगलीनुमा रचनाएँ पाई जाती हैं जो पोषक के तने में घुसकर पोषक के भोजन लाने व ले जाने वाले ऊतकों से सम्पर्क स्थापित करती हैं। भारतीय वैज्ञानिक जोड़ी मलिक और सिंह (C.P. Malik & M.B. Singh) ने बताया है कि इन चूषक जड़ों में विशेष प्रकार के एन्ज़ाइम पाए जाते हैं। ये सिर्फ उन स्थानों पर ही मिलते हैं जहाँ अमरबेल अपने पोषक से चिपकती है। ये एन्ज़ाइम पोषक के तने की कोशिकाओं की दीवार को गला देते हैं। इस तरह इनका दाब सन्तुलन बिगड़ जाने पर ये चूषक जड़ें पोषक के तने में घुस जाती हैं।

परजीवी होने के कारण इसकी चूषक जड़ों में एक और विशेषता देखी गई है। सामान्य पौधों के संवहन तंत्र में ज़ायलम व फ्लोएम दोनों मिलते हैं। ज़ायलम का काम पानी व खनिज लवणों का संवहन होता है और फ्लोएम का भोजन को स्थानान्तरित करना। देखा गया है कि अमरबेल के चूषक अंगों में केवल फ्लोएम ही होता है, ज़ायलम नहीं। अर्थात् जैसा काम वैसा ऊतक। इस तरह हम देखते हैं कि सामान्य पत्तियाँ और जड़ न होने से अमरबेल को अपना भोजन जुटाने के लिए कितनी मशक्कत करनी पड़ती है।

ड्रॉसेरा

कीटभक्षी पौधे

लगभग 2,50,000 फूलधारी पौधों में से 450 प्रजातियाँ कीटभक्षियों की श्रेणी में आती हैं। ये पौधे पृथ्वी के विस्तृत भू-भाग पर फैले हुए हैं। इन सभी में कुछ न कुछ विशेषताएँ होते हुए भी एक समानता यह है कि सभी अपने पोषण की पूर्ति हेतु कीट-पतंगों को पकड़ते हैं, उनका शिकार करते हैं।

इन सभी में एक और समानता है कि ये दलदली भूमि में उगते हैं। इन स्थानों पर हवा-पानी व रोशनी तो पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है परन्तु ज़मीन दलदली होने के कारण हवा से नाइट्रोजन लेकर उसे मिट्टी में छोड़ने वाले सूक्ष्मजीव नहीं रहते। अतः इन जगहों की मिट्टी में मुख्यतः नाइट्रोजन के लवणों की कमी रहती है जो जीवन के लिए ज़रूरी है। इसके अतिरिक्त यदि मिट्टी अम्लीय हुई तो कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटैशियम और मॉलिब्डेनम जैसे महत्वपूर्ण तत्वों की उपलब्धता भी कम होती है।

वीनस फ्लाई ट्रैप

साधारण पौधों की पत्तियों को तो मुख्य रूप से भोजन ही बनाना पड़ता है। खनिज लवणों की पूर्ति उनकी जड़ें कर लेती हैं। परन्तु इन कीटभक्षी पौधों की पत्तियों को विभिन्न कीट-पतंगों को आकर्षित कर अपना शेष भोजन भी जुटाना पड़ता है। इन पौधों की पत्तियों में तरह-तरह के रूप-रंग मिलते हैं जो इस काम में इनकी मदद करते हैं।

वीनस फ्लाई ट्रैप

कीटभक्षी पौधों में कुछ पौधों की थोड़ी-सी पत्तियाँ विशेष रचनाओं में बदल जाती हैं, जैसे *सिफेलोटस;* वहीं *ड्रॉसेरा* में सारी पत्तियाँ और *वीनस*
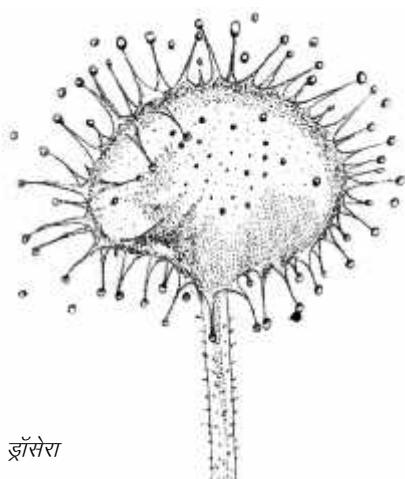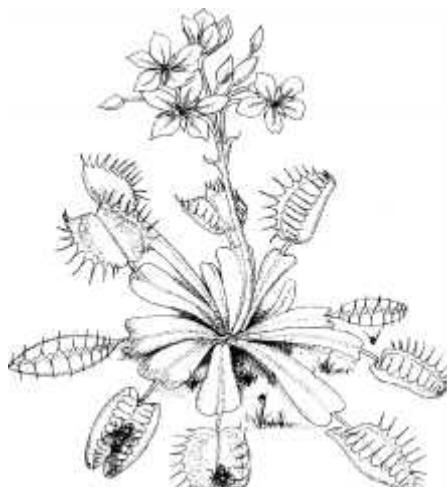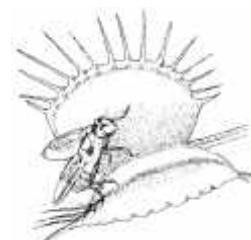
फ्लाई ट्रैप और *नेपेन्थिस* (कलश पादप) में पत्तियों का कुछ हिस्सा कीटों को पकड़ने के लिए विशेष रचना में बदल जाता है। भोजन में खनिजों की पूर्ति हेतु हुए इनके परिवर्तन आश्चर्यजनक और हैरतअंगेज़ हैं। *वीनस फ्लाई ट्रैप* की पेटीनुमा खुलती-बन्द होती पत्तियों को देख डार्विन ने इसे दुनिया का आश्चर्यजनक पौधा यूँ ही नहीं कहा था। *पिचर प्लांट (नेपेन्थिस)* में तो कुछ पत्तियाँ तरह-तरह के छोटे-बड़े, सजे-धजे नक्काशीदार रंग-बिरंगे कलशों के रूप में मिलती हैं। ये सब साज़ो-सामान इसलिए कि पर्याप्त और सन्तुलित भोजन मिलता रहे।

एक भ्रम का निवारण ज़रूरी है – दुनिया में कहीं कोई नरभक्षी पेड़ नहीं है जैसा कि अक्सर पत्र-पत्रिकाओं में छपता रहता है। कीटभक्षी अधिकांश छोटे-छोटे पौधे हैं या कमज़ोर लताएँ। कुछ तो ऐसे कि हमारे पैरों तले कुचले जाएँ तो पता भी न चले, जैसे ड्रॅसेरा।

पोषण की दृष्टि से इन कीटभक्षियों को स्वपोषी कहें या परजीवी? इनकी हरी पत्तियाँ अपना कुछ भोजन तो स्वयं बनाती हैं और बाकी पोषण के लिए कीटों का भक्षण करती हैं। अतः कीटभक्षी पौधे स्वपोषी के साथ-साथ परजीवी भी हैं।

रैफ्लेसिया – कुछ भी नहीं अपना

हमने देखा कि आंशिक रूप से परजीवी पौधों में सामान्य रूप-रंग की हरी पत्तियाँ होती हैं जिनमें भोजन निर्माण होता है। जैसे चन्दन, *लोरेन्थस* और *विस्कम*। परन्तु जैसे-जैसे पोषक पर इनकी निर्भरता बढ़ती जाती है वैसे-वैसे तना व पत्तियाँ लगातार कम होते जाते हैं।

सर स्टेमफोर्ड रैफल्स

http://media-3.web.britannica.com/eb-media/44/38544-004-8177E0F2.jpg

अगला परजीवी *रैफ्लेसिया* इस स्थिति के अन्तिम छोर पर है। इसे *सर स्टेमफोर्ड रैफल्स* (Sir Stamford Raffles) ने 1818 में सुमात्रा के जंगलों में खोजा था। इस जड़-परजीवी की लगभग 14 प्रजातियाँ इण्डोनेशिया और म्यांमार के जंगलों में मिलती हैं। इसके पोषक पौधे मुख्य रूप से कठलताएँ (Liana) हैं। उनकी जड़ों से इसका सम्बन्ध धागेनुमा रचनाओं से होता है। इस पूर्ण-परजीवी का शरीर केवल पतले धागेनुमा तन्तुओं से बना होता है। न तना, न पत्ती। जो कुछ हमें दिखाई देता है वह ज़मीन के ऊपर खिलने वाला इसका विशालकाय फूल होता है। इसके फूलों को दुनिया के सबसे बड़े फूल होने का दर्जा प्राप्त है। *रैफ्लेसिया अरनोल्डी* के लगभग एक मीटर व्यास और 15 किलो वज़न के फूलों की पंखुड़ियों की मोटाई एक से.मी. तक होती

है। फूल के आकार का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि इसकी कलियों का आकार बन्द गोभी के बराबर होता है। *रैफ्लेसिया* पोषक से प्राप्त सारी ऊर्जा अपनी वंश वृद्धि के लिए फूल बनाने में लगाता है। नर और मादा फूल अलग-अलग खिलते हैं। सुर्ख लाल-क्रीमी रंग के इस फूल से सड़े मांस जैसी गन्ध आती है। अतः इसका परागण मुर्दाखोर मक्खियों द्वारा किया जाता है।
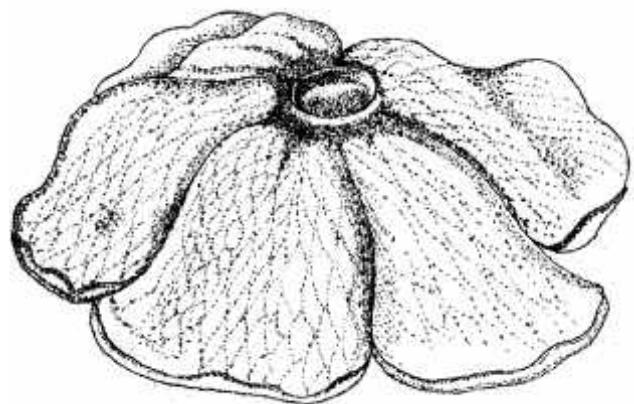
रैफ्लेसिया

ये नीले-हरे हमसफर सबके

नीला-हरा रंग बड़ा महत्वपूर्ण है। यह रंग जिन पदार्थों के कारण वनस्पतियों को मिलता है वे हैं क्लोरोफिलः क्लोरोफिल-ए और क्लोरोफिल-बी। पहला नीला-हरा और दूसरा जैतूनी।

जीवों का एक समूह है नीली-हरी शैवाल। इनके गुणों को देखते हुए पहले इन्हें वनस्पति माना जाता था मगर बाद में और अध्ययन के बाद अब इन्हें *सायनोबैक्टीरिया* कहा जाता है। ये शैवाल हों या बैक्टीरिया, जीवों का शायद ही कोई ऐसा समूह हो जिसका सम्बन्ध इनसे न हो। सरल प्रकार के ज़मीनी पौधे (लीवरवर्ट), फर्न, नग्न बीजी सायकेड हों या सर्वाधिक विकसित माने जाने वाले फूलधारी पौधे, या फिर परपोषी पत्थरफूल हों या बिना रीढ़ की हड्डी वाले जलीय जन्तु, सायनोबैक्टीरिया सबके हमसफर हैं।

लीवरवर्ट

http://doralbio8.wikispaces.com/Bryophytes
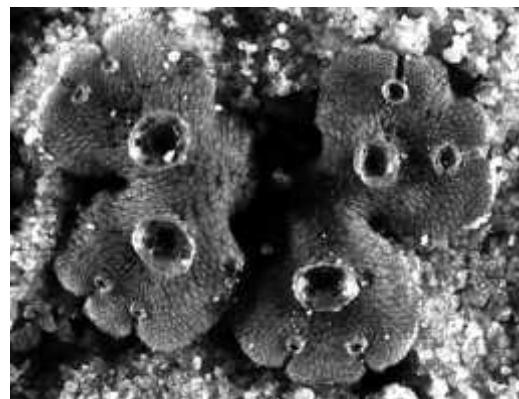
आखिर ऐसा क्या खास है इन सूक्ष्मजीवों में जो बड़े-बड़े पेड़ भी इनसे रिश्ता जोड़ते हैं? इस खासियत की चर्चा के पहले इन सम्बन्धों के प्रकार पर चर्चा करते हैं।

1. फफूँद के साथ – पत्थरफूल, जिन्हें लायकेन कहते हैं, फफूँद और शैवाल के बीच विचित्र रिश्ते से बनते हैं। ये दोनों अलग-अलग प्रकृति के जीव हैं जो आपस में गुँथकर एक नया जीव बनाते हैं। अधिकतर पत्थरफूलों में हरी या नीली शैवाल साथी के रूप में रहती है। कुछ पत्थरफूल में दोनों तरह की शैवाल पाई जाती हैं। यानी ये दो नहीं तीन तरह के जीवों से भी बने होते हैं। पहला साथी हरी शैवाल और दूसरा निश्चित रूप से सायनोबैक्टीरिया। पत्थरफूलों का सबसे पसन्दीदा

सायनोबैक्टीरिया *नॉस्टॉक* है। परन्तु *केलोथ्रिक्स*, *स्टायगोनीमा* और *सायटोनीमा* से भी खूब रिश्तेदारी निभाई जाती है।
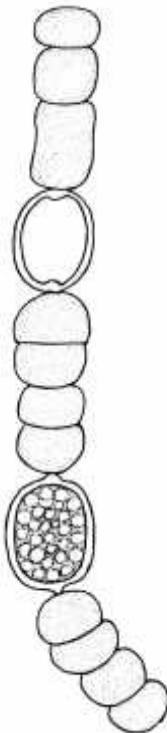
हिटरोसिस्ट

सायनोबैक्टीरिया में एक विशेषता होती है जो अन्य किसी बैक्टीरिया में नहीं पाई जाती। सायनोबैक्टीरिया एक से अधिक कोशिकाओं की लड़ियों से बने होते हैं। इनमें से कुछ कोशिकाएँ एक विशेष रूप अख्तियार कर लेती हैं। इनमें नाइट्रोजन स्थिर करने की क्षमता होती है। इन्हें हिटरोसिस्ट कहते हैं। आम तौर पर हिटरोसिस्ट तब बनते हैं जब स्थिर नाइट्रोजन का अभाव हो। ये कोशिकाएँ आसपास की कोशिकाओं से छिद्रों के माध्यम से जुड़ी होती हैं। इन छिद्रों से इन्हें भोजन प्राप्त होता है जबकि ये नाइट्रोजन को स्थिर करके ग्लूटामीन के रूप में उपलब्ध कराती हैं।

देखा गया है कि *नॉस्टॉक* जब पत्थरफूल के साथ हो तो उसमें भोजन निर्माण एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण की दर अकेले *नॉस्टॉक* की अपेक्षा कई गुना ज़्यादा होती है। पत्थरफूल के साथ रहने पर हिटरोसिस्ट की संख्या 5 से 10 गुना ज़्यादा हो जाती है। फफूँद को *नॉस्टॉक* के साथ रहने के फायदे का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि केवल दो मिनट में *नॉस्टॉक* द्वारा बनाया गया ग्लूकोज़ फफूँद द्वारा उपयोगी शर्करा *मैनीटॉल* में बदल दिया जाता है। उल्लेखनीय है कि फफूँद परपोषी जीव है जो अपना भोजन नहीं बना सकते। अतः सायनोबैक्टीरिया का साथ इनके लिए बहुत फायदे का सौदा है क्योंकि इससे इन्हें लगातार तैयार भोजन मिलता रहता है।

2. **सरल ज़मीनी पौधे के साथ** – सायनोबैक्टीरिया सिर्फ परपोषियों के साथ सम्बन्ध नहीं रखते। कई स्वपोषी पौधों ने भी नीली-हरी शैवाल के साथ रिश्ता बनाया है। *नॉस्टॉक* का *ब्लेसिया*, *केवीकुलेरिया* और *एन्थोसेरॉस* जैसे सरल ज़मीनी पौधों के साथ सदियों पुराना सम्बन्ध है। शायद तभी से जब पौधों ने पानी छोड़ ज़मीन पर अपना पहला कदम रखा था। यहाँ एक हरे पौधे का सम्बन्ध दूसरे हरे पौधों से आन्तरिक सहजीवी जैसा है।

नॉस्टॉक के सूत्र शुरुआत में इन पौधों के शरीर में एक छोटे से छिद्र द्वारा प्रवेश करते हैं जो देखते-देखते भरी-पूरी बस्ती में बदल जाते हैं। एक बार रिश्ता जुड़ने के साथ *नॉस्टॉक* प्रमुख रूप से नाइट्रोजन स्थिरीकरण का

काम करता है तथा अपनी पोषण सम्बन्धी ज़रूरतों के लिए पूरी तरह पोषक पर निर्भर रहता है। यहाँ भी *हिटरोसिस्ट* की संख्या 50 प्रतिशत तक बढ़ जाती है।

एडीऐन्टमः एक फर्न

http://www.botanicalgarden.ubc.ca/potd/2005/07/adiantum_pedatu.php

3. फर्न के साथ – फर्न यानी ऐसे पौधे जिनका शरीर मुख्य रूप से पत्तियों से ही बना होता है। तने के नाम पर ज़मीन के नीचे रेंगने वाला राइज़ोम मात्र होता है। इन्हें मुख्य रूप से बाग-बगीचों व घरों में इनकी सुन्दर पंखों जैसी सदाबहार पत्तियों के लिए लगाया जाता है। *ऐज़ोला* फर्न की एक जलीय प्रजाति है। इसके शरीर की छोटी-छोटी गुहाओं में *एनाबीना* नामक सायनोबैक्टीरिया रहता है।

इस अवस्था में *एनाबीना* में भोजन निर्माण की प्रक्रिया पूरी तरह निष्क्रिय हो जाती है। परन्तु नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य प्रमुख रूप से चलता रहता है।

ऐज़ोला-एनाबीना तंत्र नाइट्रोजन उपलब्ध कराने का सबसे सक्षम तंत्र है क्योंकि यहाँ मेज़बान फर्न में ढेर सारा पोषक पदार्थ मिलता रहता है जिससे *एनाबीना* का नाइट्रोजन को उर्वरक में बदलने वाला कारखाना रात में भी चलता रहता है। इसकी इसी क्षमता के चलते दुनिया भर में चावल की खेती में इसका जैव उर्वरक के रूप में बहुतायत से इस्तेमाल हो रहा है।

4. बीजधारी पौधों के साथ – नग्नबीजी पौधे *सायकेड* और फूलधारी पौधे *गुनेरा* के साथ भी सायनोबैक्टीरिया रहते हैं। सायकस खजूर जैसा एक छोटा पेड़ है जिसे पुराने महलों, मकबरों, बाग-बगीचों में देखा जा सकता है। आगरा का ताजमहल हो, औरंगाबाद का बीबी का मकबरा हो या इन्दौर का लालबाग, सायकस के सुन्दर पौधे यहाँ की विशेषता हैं। यह एक ऐसा सदाबहार पेड़ है जिसके शीर्ष पर हमेशा हरी चमकीली बड़े-बड़े पंखों जैसी पत्तियों का एक ताज-सा रहता है। इसी सुन्दर ताज के कारण इसे बगीचों व घरों में लगाया जाता है। अन्यथा न तो इसमें फूल खिलते हैं और न ही फल लगते हैं।

सायकस

http://gardening.ktsa.com/pages/7985553.php?

कोरल जड़

एनाबीना और *नॉस्टॉक* इसकी विशेष कोरलनुमा जड़ों में रहते हैं। इन कोरलनुमा जड़ों में एक विशेष 'शैवाल क्षेत्र' पाया जाता है जिसमें ये रहते हैं। कोरल जड़ें ज़मीन के थोड़ा-सा नीचे रहती हैं जहाँ इन्हें प्रकाश मिलता रहता है। ये जड़ें सामान्य जड़ों के विपरीत ज़मीन से ऊपर की ओर वृद्धि करने वाली होती हैं।

5. फूलधारी पौधों के साथ – सायनोबैक्टीरिया के सहयोगी सम्बन्धों की अन्तिम पायदान पर फूलधारी पौधा *गुनेरा* है। इसमें *नॉस्टॉक* के सूत्र तने पर पत्तियों के आधार पर बनी गठानों में रहते हैं। संक्रमण की शुरुआत एक ग्रन्थि बनने से होती है जो एक चिपचिपा पदार्थ छोड़ती है जिससे *नॉस्टॉक* तेज़ी से वृद्धि करता है और एक गठान बन जाती है। इस सम्बन्ध में भी *नॉस्टॉक* की 80 प्रतिशत कोशिकाएँ हिटरोसिस्ट में बदल जाती हैं। इसमें *नॉस्टॉक* तेज़ी से नाइट्रोजन को उपयोगी रूप में बदलता है जिससे *गुनेरा* की सारी आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं। वैसे *नॉस्टॉक* नम ज़मीन पर स्वतंत्र रूप से भी रहता है परन्तु यहाँ दोनों मिलकर एक और एक ग्यारह सिद्ध होते हैं।

कोरल जड़ की काट

6. जन्तुओं के साथ – ऐसा कैसे हो सकता है कि इतने विविध प्रकार से सम्बन्ध जोड़ने वाले सायनोबैक्टीरिया का जन्तुओं से रिश्ता न हो? स्पॉन्ज में सायनोबैक्टीरिया होने के कारण वे हरे दिखाई देते हैं। स्पॉन्ज से रिश्ता जोड़ने वाला सायनोबैक्टीरिया सम्भवतः *एफेनोकैप्सा* है। स्पॉन्ज के अन्दर सायनोबैक्टीरिया का विभाजन नहीं होता। यह भी पता चला है कि इनका प्रजनन और चयापचय मेज़बान के नियंत्रण में रहता है। यह भी उल्लेखनीय बात है कि स्पॉन्ज सर्वाहारी हैं, फिर भी अधिकांश सायनोबैक्टीरिया इनका भोजन बनने से बचे रहते हैं। इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं कि ट्रॉपिकल समुद्री पानी में, जहाँ स्थिर नाइट्रोजन की कमी होती है, वहाँ सायनोबैक्टीरिया परपोषी स्पॉन्ज को नाइट्रोजन उपलब्ध कराते हैं।

सायनोबैक्टीरिया के इतने विविध, सहजीवी सहयोगी सम्बन्धों के बारे में जानने के बाद अब तो आपको पता चल ही चुका होगा कि तरह-तरह के जीवों का इनके साथ मज़बूत रिश्ता क्यों बना हुआ है। दरअसल सभी

जैविक सम्बन्ध जीवों के बीच आपसी लेन-देन पर आधारित होते हैं। यहाँ सायनोबैक्टीरिया की बदौलत ही पौधों को स्थिर रूप में नाइट्रोजन उपलब्ध होती है। बदले में सायनोबैक्टीरिया को रहने का सुरक्षित स्थान और जीवनयापन के लिए पर्याप्त भोजन उपलब्ध हो जाता है।

एफेनोकैप्सा

http://protist.i.hosei.ac.jp/pdb/images/Prokaryotes/Chroococcaceae/Aphanocapsa/Aphanocapsa.html

नाइट्रोजन एक ऐसा महत्वपूर्ण तत्व है जिसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

समस्त जीवों का कोशिका द्रव, डी.एन.ए., एन्ज़ाइम और प्रोटीन इसके बगैर बन ही नहीं सकते। विडम्बना यह है कि इतना महत्वपूर्ण तत्व होने के बावजूद उच्च श्रेणी के पेड़ पौधों और जन्तुओं में यह क्षमता नहीं है कि वे हवा की नाइट्रोजन को उपयोगी पदार्थों में बदल सकें। यह तो सायनोबैक्टीरिया ही है जिसके पास हवा की नाइट्रोजन को स्थिर कर उपयोगी पदार्थ में बदलने की अद्भुत क्षमता है।

एक विलक्षण फूलधारी पौधाः मोनोट्रोपा

सजीवों को विभिन्न समूहों में बाँटने का एक प्रमुख आधार उनके पोषण का तरीका भी है। इस दृष्टि से सभी सजीवों को दो श्रेणी में रखा गया है। पहले स्वपोषी और दूसरे परपोषी। स्वपोषी जीव सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। सारे हरे पौधे एवं कुछ बैक्टीरिया इसी श्रेणी में आते हैं। जो जीव अपना भोजन दूसरे जीवों से प्राप्त करते हैं वे परपोषी कहे जाते हैं। सारे जन्तु इसी श्रेणी में आते हैं। इनका भोजन या तो स्वपोषी पेड़-पौधे होते हैं या अन्य जन्तु।

परपोषी पौधों को भी तीन समूहों में बाँटा गया हैः परजीवी, सहजीवी और मृतजीवी। परजीवी यानी जो जीव पचा-पचाया भोजन किसी अन्य जीव से प्राप्त करे। सहजीवी का मतलब होता है दो जीवों का इस तरह साथ-साथ रहना कि वे एक-दूसरे को मदद पहुँचाएँ और सामान्यतः इस मदद के बगैर उनका अस्तित्व सम्भव न हो। मृतजीवी यानी सड़े-गले मृत जैविक पदार्थों से अपना भोजन प्राप्त करने वाले पौधे। ये जंगल में सड़ी-गली पत्तियों व कार्बनिक पदार्थों के ढेरों पर उगते हैं और इनमें भोजन बनाने वाला हरा पदार्थ क्लोरोफिल नहीं होता।

मोनोट्रोपा

मृतजीवी अपना भोजन मृत जैविक पदार्थों से द्रव के रूप में ग्रहण करते हैं। इनमें ऐसे विशेष एन्ज़ाइम होते हैं जो इनके शरीर से बाहर आकर मृत पदार्थों पर क्रिया करके उन्हें द्रव में बदल देते हैं। ब्रेड, अचार, मुरब्बों और चमड़ों पर लगने वाली फफूँद इस मायने में मृतजीवी हैं।

उच्चतर माध्यमिक और स्नातक स्तर की अधिकांश पाठ्यपुस्तकों में *मोनोट्रोपा सराकोडेस*, *नियोटिया* और *इपीपोगान* जैसे कुछ ऑर्किड्स को भी मृतजीवी कहा गया है। ये दरअसल फूलधारी पौधे हैं। थोड़ा गहराई में जाएँ तो इनको मृतजीवी कहना उचित नहीं लगता। बल्कि इनका अध्ययन प्रकृति की खाद्य श्रृंखला के कुछ रोचक तथ्य उजागर करता है।

मोनोट्रोपा और *नियोटिया* के बारे में यह तो बहुत पहले से ही ज्ञात था कि इनकी जड़ों पर जड़-फफूँद (मायकोराइज़ा) का जाल बिछा रहता है। यह माना गया था कि ये इसी फफूँद-जाल के माध्यम से सड़ी-गली पत्तियों और मृत जन्तुओं से अपना भोजन प्राप्त करते हैं।

मोनोट्रोपा इंडिका एक क्लोरोफिल रहित क्रीम रंग का पौधा है जो अधिकतर चीड़ (पाइन), ओक और फेगस जैसे पेड़ों की छाया तले सड़ी-गली पत्तियों के बीच उगता पाया जाता है। सड़ी-गली पत्तियों के बीच उगने के कारण इसके मृतजीवी होने की पुष्टि-सी हो गई। चीड़ और स्प्रूस के पेड़ों की जड़ों के आसपास उगने के कारण इसे बाद में जड़ परजीवी भी कहा गया। परन्तु इन पेड़ों की जड़ों से इसका कोई भौतिक जुड़ाव न मिलने के कारण इस मत को खारिज कर दिया गया।

आगे चलकर गहराई से छानबीन करने पर पता चला कि मोनोट्रोपा का सच कुछ और ही है। और इस कहानी में एक तीसरा पात्र भी है। यह तीसरा पात्र है तो वही फफूँद मगर उसकी वास्तविक भूमिका काफी समय बाद स्पष्ट हो पाई। और तब पता चला कि उपरोक्त सारे मत कुछ हद तक सही हैं।

अब यह स्पष्ट हो चुका है कि मोनोट्रोपा और चीड़ व स्प्रूस के पेड़ एक-दूसरे से सीधे चाहे न जुड़े हों मगर एक जड़ फफूँद *बोलीटस* के ज़रिए अवश्य जुड़े रहते हैं। यह फफूँद मोनोट्रोपा की जड़ों और पोषक पेड़ की जड़ों के बीच एक सेतु की तरह काम करती है।

ब्यॉर्कमैन (Bjorkman) ने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि *बोलीटस* फफूँद पोषक पेड़ (चीड़ व स्प्रूस) से मोनोट्रोपा को पोषक पदार्थ उपलब्ध कराती रहती है। इसे सिद्ध करने के लिए उन्होंने कुछ रोचक प्रयोग किए। इनमें आइसोटोपों का उपयोग किया गया था।

ब्रेड पर फफूँद और उसके बीजाणु

कभी-कभी प्रकृति में एक ही तत्व के एकाधिक रूप पाए जाते हैं जिन्हें हम समस्थानिक अथवा
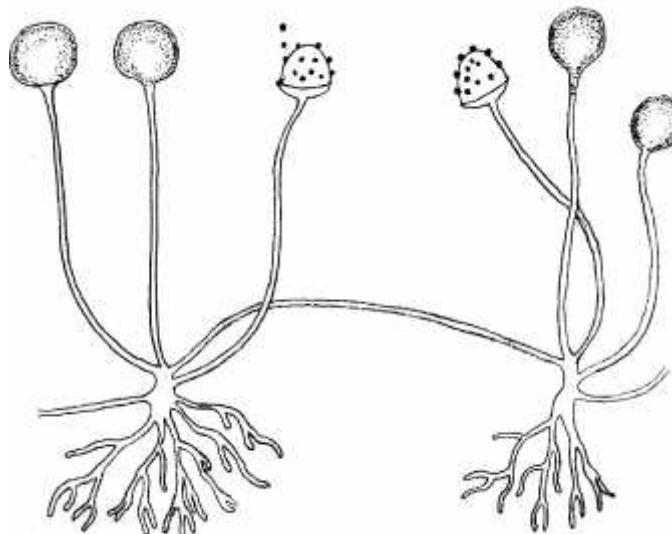
आइसोटोप कहते हैं। ये रासायनिक रूप से तो एक जैसे होते हैं मगर इनके परमाणु भार अलग-अलग होते हैं जिससे इन्हें अलग-अलग पहचाना जा सकता है। मसलन कार्बन तीन रूपों में पाया जाता है – कार्बन-12, कार्बन-13 और कार्बन-14। तो ब्यॉर्कमैन ने ऐसा ग्लूकोज़ लिया जिसमें जान-बूझकर कार्बन-14 का उपयोग किया गया था। कार्बन-14 रेडियोसक्रिय होता है। यानी अब इससे निकलने वाली विकिरणों की सहायता से वे देख सकते थे कि यह कार्बन-14 युक्त ग्लूकोज़ कहाँ-कहाँ जाता है। इसी प्रकार से उन्होंने आइसोटोप-चिह्नित फॉस्फोरस वाले भी कुछ पदार्थ लिए। उन्होंने देखा कि जब चीड़ के पेड़ में रेडियोसक्रिय ग्लूकोज़ और फॉस्फोरस को इंजेक्शन से प्रविष्ट कराया जाता है तो कुछ ही समय पश्चात् ये दोनों चिह्नित पदार्थ 1-2 मीटर दूर उग रहे मोनोट्रोपा की काया में मिलते हैं। इस प्रयोग के आधार पर ब्यॉर्कमैन ने मोनोट्रोपा को मृतजीवी की बजाय परजीवी घोषित किया।

अतः कुल मिलाकर मोनोट्रोपा एक तिहरा तंत्र है जिसमें एक हरा-भरा विशाल पेड़ (चीड़ या स्प्रूस), क्लोरोफिल रहित एक छोटा शाकीय पौधा (*मोनोट्रोपा*) और जड़-फफूँद (*बोलीटस*) एक-दूसरे से जुड़े हैं। इस तरह तीन विभिन्न जीव एक पोषण तंत्र बनाते हैं। अतः *मोनोट्रोपा* को मृतजीवी मानना ठीक नहीं। यह तो परजीवी फूलधारी पौधा है जो फफूँद के माध्यम से अपना पोषण किसी और पेड़ से प्राप्त करता है।

क्या पौधों के अन्दर उम्र कैद काट रहे हैं क्लोरोप्लास्ट और माइटोकॉण्ड्रिया?

इस बात के कई प्रमाण हैं कि पौधों की पत्तियों को हरा-भरा रखने वाले क्लोरोप्लास्ट कभी अपने आप में स्वतंत्र रूप से तैरने वाले जलीय जीव थे जो वर्तमान में पेड़-पौधों की पत्तियों में कैद होकर रह गए हैं। यही किस्सा कोशिकाओं के एक और अंग माइटोकॉण्ड्रिया का भी है।

प्रसिद्ध जीववैज्ञानिक जोड़ी *श्लाइडेन* (Schleiden) और *श्वान* (Schwann) ने अपने कोशिका सिद्धान्त में बताया था कि पेड़-पौधों और जन्तुओं सहित सभी जीवों के शरीर छोटी-छोटी इकाइयों से बने होते हैं जिन्हें कोशिकाएँ कहते हैं। अर्थात् कोशिका जीवन का आधार है। कोशिकाओं की जाँच-पड़ताल करने पर पता चलता है कि इसमें एक तरल भरा रहता है जो कोशिका द्रव्य कहलाता है। जन्तुओं की कोशिका के कोशिका द्रव्य में मुख्य रूप से दो रचनाएँ और दिखाई देती हैं – पहली केन्द्रक और दूसरी माइटोकॉण्ड्रिया। वनस्पति कोशिकाओं में इनके अलावा एक तीसरी रचना और मिलती है जिसे क्लोरोप्लास्ट या हरित लवक कहते हैं।

यूकेरियोटिक कोशिका

http://www.infovisual.info/01/img_en/001%20Plant%20cell.jpg

क्लोरोप्लास्ट और माइटोकॉण्ड्रिया दोनों ही कोशिका के महत्वपूर्ण अंग हैं। इनके बिना कोशिका के जीवित होने की कल्पना नहीं की जा सकती। क्लोरोप्लास्ट के बिना हरे पौधे भोजन नहीं बना सकते और माइटोकॉण्ड्रिया के अभाव में पौधों या जन्तुओं द्वारा भोजन का उपयोग नहीं हो सकता। वैसे बैक्टीरिया जैसे कुछ जीव माइटोकॉण्ड्रिया के बगैर भी काम चलाते हैं। यदि आपको यह पता चले कि कोशिका के ये दोनों महत्वपूर्ण अंग कभी स्वतंत्र जीव हुआ करते थे जो आज केन्द्रक-युक्त (यूकेरियोटिक) कोशिकाओं में उम्र कैद काट रहे हैं तो आपको झटका नहीं लगेगा?

जी हाँ, यह सच है और इसके कई प्रमाण हैं कि पौधों की पत्तियों को हरा-भरा रखने वाले क्लोरोप्लास्ट कभी अपने आप में स्वतंत्र रूप से तैरने वाले जलीय जीव थे जो वर्तमान में पेड़-पौधों की पत्तियों में कैद

होकर रह गए हैं। यही किस्सा माइटोकॉण्ड्रिया का भी है।

क्लोरोप्लास्ट का एक त्रिआयामी चित्र

केन्द्रक-युक्त कोशिका के ये दोनों महत्वपूर्ण अंग ऊर्जा के रूपान्तरण से जुड़े हैं। क्लोरोप्लास्ट जादुई रंजक क्लोरोफिल-युक्त होने से सूर्य की ऊर्जा का उपयोग कर भोजन का निर्माण करके समस्त जीवों को रासायनिक ऊर्जा उपलब्ध कराता है। माइटोकॉण्ड्रिया इस संचित ऊर्जा का उपयोग कर ए.टी.पी. (Adenosine Triphosphate) जैसे उच्च ऊर्जा युक्त अणु बनाता है। इसलिए इसे कोशिका का पावर हाउस भी कहते हैं। पहला भोजन निर्माण की प्रक्रिया से जुड़ा है तो दूसरा श्वसन से।

क्लोरोप्लास्ट और माइटोकाण्ड्रिया दोनों कई असामान्य लक्षण दर्शाते हैं। ये दोनों अंग सम्पूर्ण कोशिका की तरह अपनी स्वयं की दोहरी दीवार से घिरे रहते हैं। दोनों में स्वतंत्र रूप से वृद्धि और विभाजन की क्षमता होती है। ये ऊर्जा के भण्डार कहे जाने वाले ए.टी.पी. अणुओं का उत्पादन करते हैं। ए.टी.पी. जीवों का संचित धन है और इसे जैविक ऊर्जा करेंसी कहा जाता है। दोनों में स्वयं का स्वतंत्र जीनोम (आनुवंशिक पदार्थ डी.एन.ए.) होता है। इनके पास जीन के दोहरीकरण, जीन की अभिव्यक्ति और प्रोटीन निर्माण की भी व्यवस्था है।

क्लोरोप्लास्ट के जीनोम यानी प्लास्टोम की आनुवंशिक भूमिका पर दुनिया की कई प्रयोगशालाओं में काम चल रहा है। कोशिका से अलग किए गए क्लोरोप्लास्ट अपना आर.एन.ए. बनाते देखे गए हैं जो सामान्यतः कोशिका के केन्द्रक की उपस्थिति में ही सम्भव होता है। यह भी सच है कि प्लास्टोम के बगैर नए क्लोरोप्लास्ट नहीं बन सकते। यह इसकी आंशिक स्वायत्तता का प्रमाण है। क्लोरोप्लास्ट की प्रोटीन निर्माण व्यवस्था यानी रायबोसोम, बैक्टीरिया के रायबोसोम से कई तरह से मेल खाती है। जैसे इन दोनों का आकार केन्द्रक-युक्त कोशिका के रायबोसोम का दो-तिहाई होता है।

केन्द्रक-रहित बैक्टीरिया की ही तरह क्लोरोप्लास्ट और माइटोकॉण्ड्रिया

के रायबोसोम का प्रोटीन निर्माण क्लोरएम्फेनिकॉल नामक एंटीबायोटिक से बाधित हो जाता है जबकि इस एंटीबायोटिक का उस कोशिका की सामान्य प्रोटीन निर्माण की प्रक्रिया पर कोई प्रभाव नहीं होता। यह इसका प्रमाण है कि क्लोरोप्लास्ट और माइटोकॉण्ड्रिया बैक्टीरिया से काफी मिलते-जुलते हैं।

आन्तरिक सहजीवी सिद्धान्त

एंड्रियास शिम्पर (Andreas Schimper) ने सन् 1883 में यह प्रस्ताव रखा था कि वर्तमान पेड़-पौधों की कोशिकाओं में पाया जाने वाला क्लोरोप्लास्ट कोशिकीय सहजीवी का उदाहरण है। इस परिकल्पना के अनुसार क्लोरोप्लास्ट उन सायनोबैक्टीरिया की सन्तानें हैं जो किसी जीव द्वारा कोशिका-भक्षण के कारण अपनी कोशिका के अन्दर ले लिए गए थे और अब वहाँ आन्तरिक सहजीवी के रूप में निवास कर रहे हैं। सायनोबैक्टीरिया और क्लोरोप्लास्ट द्वारा निर्मित प्रोटीन शृंखलाओं में समानता के आधार पर भी इस परिकल्पना को बल मिलता है।

समय के साथ ये आन्तरिक सहजीवी स्वतंत्र रूप से रहने की क्षमता खो बैठे क्योंकि उनकी आनुवंशिक सूचनाओं (डी.एन.ए.) का एक बड़ा हिस्सा धीरे-धीरे मेज़बान कोशिका के केन्द्रक में स्थानान्तरित हो गया।

क्लोरोप्लास्ट और माइटोकॉण्ड्रिया के लिए आन्तरिक सहजीवी शब्द का उपयोग उपरोक्त तथ्यों के चलते उचित ही लगता है। इन अंगों की आन्तरिक भित्ति प्रोटोक्लोरोफाइट की प्लाज़्मा झिल्ली से मिलती-जुलती होती है और बाहरी झिल्ली मेज़बान कोशिका की भित्ति से। यही सिद्धान्त माइटोकॉण्ड्रिया की दोहरी दीवार की उपस्थिति को भी उचित रूप से समझाता है। माइटोकॉण्ड्रिया की बाहरी दीवार पर उपस्थित सूक्ष्म छिद्र (पोरिंस) भी इसका एक प्रमाण हैं। गौरतलब है कि पोरिंस कुछ बैक्टीरिया की बाहरी झिल्ली में भी पाए जाते हैं। इस समानता से एक बार फिर इनके आन्तरिक सहजीवी होने की पुष्टि होती है।

क्लोरोप्लास्ट का इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी चित्र

माइटोकॉण्ड्रिया के अन्दर की झिल्ली की आन्तरिक सिलवटें (क्रिस्टी) और क्लोरोप्लास्ट के थायलेकॉइड की सिलवटों में समानता नज़र आती है। फर्क इतना भर है कि माइटोकॉण्ड्रिया में ये सिलवटें क्लोरोप्लास्ट की तरह अलग-अलग खानों में विभक्त नहीं होतीं। बहरहाल, दोनों की

आन्तरिक झिल्ली का काम एक समान है – ऊर्जा का संग्रहण और स्थानान्तरण करना।

क्लोरोप्लास्ट और माइटोकॉण्ड्रिया की आन्तरिक सहजीवी उत्पत्ति के सिद्धान्त को इस बात से भी बल मिलता है कि पैरामीशियम जैसे जीव की काया के अन्दर बैक्टीरिया पाए जाते हैं। इसी तरह सायनोबैक्टीरिया सामान्य रूप से कई जन्तुओं और यहाँ तक कि पौधों के अन्दर आज भी मिलते हैं। प्रकाश संश्लेषी सायनोबैक्टीरिया आन्तरिक सहजीवी हों तो मेज़बान कोशिका में प्रकाश ऊर्जा का उपयोग कर कई प्रकार के नए उत्पाद बनाने की क्षमता आ जाती है।

जैव विकास के सन्दर्भ में यह स्वीकारा जा सकता है कि इस प्रकार का सहयोगी सम्बन्ध ऐसी परिस्थितियों में विकसित हुआ होगा जहाँ अन्दर आए मेहमान को थोड़ी स्वायत्तता होगी। बाकी विशिष्ट रसायनों के लिए वह मेज़बान कोशिका के केन्द्रक और कोशिका द्रव्य पर निर्भर करता होगा।

इन दोनों अंगों की आन्तरिक और बाहरी झिल्ली की रचना एवं कार्य के अन्तरों को भी इनकी उत्पत्ति के सन्दर्भों में ही देखना चाहिए। बाहरी झिल्ली की रचना मेज़बान कोशिका के एंडोप्लाज़्मिक रेटीकुलम के बहुत ज़्यादा समान है जबकि आन्तरिक झिल्ली की रचना बिलकुल भिन्न है।

क्लोरोप्लास्ट और सायनेल

कई जीव-जन्तु अपने शरीर में क्लोरोप्लास्ट जैसी रचनाएँ पाले रखते हैं। ये क्लोरोप्लास्ट सायनोबैक्टीरिया से मिलते हैं। इन्हें सायनेल कहा गया है। ऐसा माना जाता है कि इन अन्तःजीवी शैवालों ने मेज़बान कोशिकाओं के लिए प्रकाश संश्लेषण और भोजन निर्माण का काम सम्हाल रखा है। जैसे *सायनोफोरा पैराडॉक्सा* के शरीर के अन्दर 2-4 गोलाकार सायनेल मिलते हैं। इस तरह के सायनेल कई जीवों में पाए गए हैं।

सायनोफोरा पैराडॉक्सा

http://botany.natur.cuni.cz/algo/praktika/12/cyanophora.jpg

सायनोफोरा पैराडॉक्सा के सायनेल के प्रकाश संश्लेषण तंत्र की रचना और संगठन सायनोबैक्टीरिया के समान है। यहाँ तक कि सायनेल में बने भोज्य पदार्थों का स्थानान्तरण मेज़बान कोशिका के कोशिका द्रव्य में होना भी सिद्ध किया जा चुका है। मेज़बान और सायनेल का यह सम्बन्ध अविकल्पी प्रकार का लगता है क्योंकि अलग करने पर दोनों में से एक भी जीवित नहीं रहता है। अतः सायनेल को अन्य जीवों में पाए जाने वाले क्लोरोप्लास्ट के समान माना जा सकता है।

उपरोक्त प्रमाणों से यह सम्भव लगता है कि माइटोकॉण्ड्रिया और क्लोरोप्लास्ट की उत्पत्ति तो स्वतंत्र केन्द्रक-हीन जीवों के रूप में हुई थीं जो कालान्तर में बड़ी कोशिकाओं के अन्दर बस गए। ये बड़ी कोशिकाएँ केन्द्रक-युक्त जीवों की पूर्वज थीं। कोशिका के अन्दर समाहित इन छोटी कोशिकाओं के पास ऊर्जा को संग्रहित करने और परिवर्तन करने की विशिष्ट क्षमता थी। इन्होंने अपने ये महत्वपूर्ण लक्षण बड़ी कोशिकाओं को दान में दिए हैं।

ये नई कोशिकाएँ निश्चित रूप से अपने अन्य सम्बन्धियों की तुलना में लाभ में रही होंगी। जल्दी ही इनकी संख्या तेज़ी से बढ़ी होगी। उल्लेखनीय है कि सभी विकसित परपोषी जीवों में माइटोकॉण्ड्रिया पाए जाते हैं और सभी स्वपोषी विकसित पौधों में माइटोकॉण्ड्रिया के साथ-साथ क्लोरोप्लास्ट भी मिलते हैं।

ताज़ा मिसाल

क्लोरोप्लास्ट के आन्तरिक सहजीवी होने की एक ताज़ा मिसाल हाल ही में मिली है जो उक्त सिद्धान्त की पुष्टि करती है। जापान के त्सुकुबा विश्वविद्यालय के नोरिको ओकामोटो और इसाओ इनुए (N. Okamoto & I. Inouye) ने एक ऐसा जीव खोजा है जो ऐसे सहजीवी को हर पीढ़ी में नए सिरे से अंगीकार करता है। इसका नाम है *हैटेना*। इसकी कोशिका में सहजीवी के रूप में एक शैवाल पाई जाती है। साइंस पत्रिका के एक शोध पत्र में इन्होंने बताया है कि जब हैटेना विभाजित होता है तो दो कोशिकाएँ बनती हैं। इनमें से एक कोशिका शैवाल सहित होती है और दूसरी शैवाल रहित। मज़ेदार बात यह है कि शैवाल रहित हैटेना के शरीर पर भोजन ग्रहण करने का एक अंग बनता है जिसकी मदद से वह अपने पर्यावरण में से एक नई शैवाल कोशिका को अपने अन्दर कर लेता है। और फिर उनके बीच सहयोगी सम्बन्ध बन जाता है। आन्तरिक सहजीवी सिद्धान्त का इससे बड़ा और क्या प्रमाण हो सकता है?

हैटेना

http://bytesizebio.net/index.php/2009/07/04/from-predator-to-plant-in-one-gulp/

विकसित प्रकार की कोशिकाएँ अपने सहजीवी उपांगों को पर्यावरण की विषमताओं से बचाती प्रतीत होती हैं। इसके चलते ही केन्द्रक-युक्त जीव थल के साथ-साथ अम्लीय पानी को जीतने में भी समर्थ हो पाए हैं। ऐसे पर्यावरण में सायनोबैक्टीरिया आज नहीं मिलते मगर इन आवासों में केन्द्रक-युक्त शैवाल बहुतायत में पाई जाती हैं।

✦✦

ललचाती गन्ध और केकड़ा मकड़ी...

केकड़ा मकड़ी की बात करने के लिए कीटभक्षी पौधे सरासेनिया का उल्लेख लाज़मी है। आप कहेंगे ऐसा भी क्या! दरअसल पहले ज़रा कीटभक्षी सरासेनिया की बनावट पर नज़र डालें। रंगीन, आकर्षक और मदहोश कर देने वाली गन्ध से युक्त कलशनुमा रचना! ऊपर की तरफ मकरन्द स्रावित करता हुआ ढक्कन! कलश के पास अन्दर की ओर कड़े चिकने रोएँ ताकि एक बार शिकार हाथ में आ जाए तो बस अन्दर की तरफ धँसते जाने के अलावा कोई और चारा न रहे। और अन्ततः घड़े की पेंदी में जमा वह पाचक रस जो कीड़े का काम तमाम कर पचा जाता है उसे।

सरासेनिया

पर मकड़ी कहाँ गई! जनाब वहीं है, ज़रा गौर से देखिए तो सही, वहीं कलश के मुँह के पास। यही तो कमाल है। केकड़ा मकड़ी कीटभक्षी सरासेनिया के कलश के मुँह के अन्दर – कड़क रोओं से थोड़ा ऊपर – अपना जाल बना लेती है। ताकि जब कीट आकर्षित होकर कीटभक्षी पौधे की तरफ आएँ तो उसके जाल में फँस जाएँ। इससे भी अधिक मज़ेदार बात यह है कि मकड़ी न केवल उस कलश में बेखौफ घूमती रहती है बल्कि कभी-कभी खतरा महसूस होने पर पेंदी में पड़े पाचक रस में भी घुस जाती है, जिसका इस मकड़ी पर कोई असर नहीं होता है। है न कमाल, कि जाल तो बिछाया पौधे ने और उसके शिकार को बीच में ही साफ कर दिया मकड़ी ने। यहाँ मकड़ी की समझदारी की दाद देना चाहिए कि उसने कीटभक्षी पौधे की रणनीति का क्या खूब फायदा उठाया है।
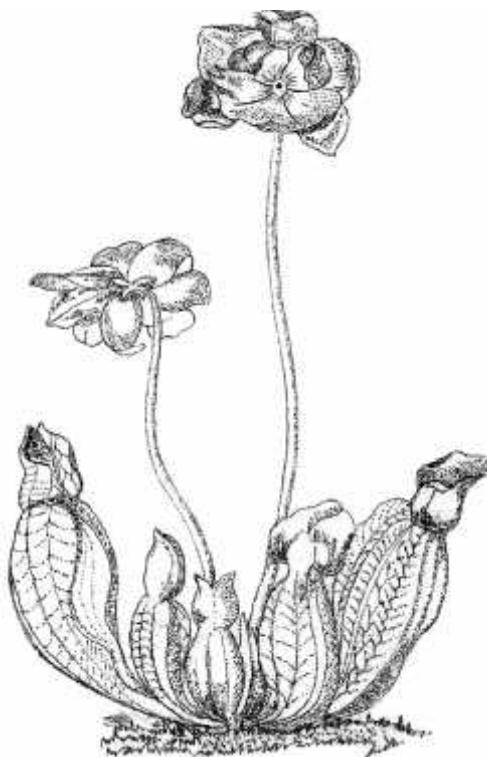
एक जीव के व्यर्थ पदार्थ दूसरे का जीवन आधार

जन्तुओं ने हमेशा पौधों से लाभ उठाया है। पौधों द्वारा छोड़ी गई ऑक्सीजन हमारे लिए प्राणदायी है। इनके द्वारा अपने लिए बनाया गया भोजन हमारे पोषण का मुख्य आधार है। सच तो यह है कि जीने के दो प्रमुख आधार – ऑक्सीजन और भोजन – हमें इन्हीं से मिलते हैं। पेड़-पौधों से हमारे जैसे जन्तुओं का यह रिश्ता प्रत्यक्ष नहीं परोक्ष है। परन्तु इस दुनिया में ऐसे जन्तुओं की भी कोई कमी नहीं है जिन्होंने हरे पौधों से अपना रिश्ता सीधे ही जोड़ रखा है। ऐसे जन्तुओं ने इन उपयोगी हरे पौधों को अपने शरीर के अन्दर ही पनाह दे रखी है, अपने शरीर का एक हिस्सा बना लिया है। ऐसी शैवालों को, जो शरीर के अन्दर ही रहती हैं, अन्तःजीवी (एंडोज़ोइक) यानी जन्तुओं के शरीर के अन्दर रहने वाली शैवाल (काई) कहा जाता है।

समुद्री पंखा

शैवाल की प्रकृति के आधार पर ये सम्बन्ध तीन प्रकार के हैंः *ज़ू ज़ैन्थेली* में लाल-भूरी और पीली शैवाल जन्तुओं के शरीर में रहती है। यदि शैवाल चमकदार हरी-पीली हो तो यह सम्बन्ध *ज़ू क्लोरेली* कहलाता है। और यह रिश्ता हरी-नीली शैवालों के साथ जुड़े तो इसे *ज़ू सायनेली* कहते हैं। ये नाम इन शैवालों में पाए जाने वाले रंजकों के रंग के आधार पर रखे गए हैं।

हरी स्वपोषी शैवालों के साथ कई जन्तुओं ने अपना रिश्ता जोड़ रखा है। इनमें पॉलीकीट कृमि, चपटे कृमि, सीप, जेली फिश, सी ऐनीमोन, हायड्रा, समुद्री पंखा, स्पॉन्ज और मूँगा (कोरल) जैसे जीव प्रमुख हैं।

सी ऐनीमोन

ज़ाहिर है जो जीव एक ही प्राकृतवास में पाए जाते हैं उन्हीं के बीच रिश्ता बनेगा। अतः समुद्री जीव समुद्री शैवालों से और ताज़े पानी के जीव नदी व झीलों में पाई जाने वाली शैवालों से नाता जोड़ते हैं।

हायड्रा, सी ऐनीमोन, मूँगा और स्पॉन्ज जैसे जन्तुओं में अन्तःजीवी शैवाल नीली-हरी बैक्टीरिया समूह की होती है जबकि ताज़े पानी के जन्तुओं में हरी शैवाल पाई जाती है। समुद्री जन्तुओं में डायनोफ्लैजीलेट प्रकार की शैवाल यह भूमिका निभाती है।
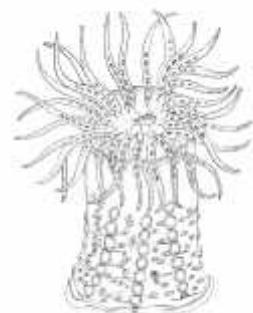
पौधों और जन्तुओं के सहयोगी सम्बन्धों पर किए गए एक अध्ययन में देखा गया कि 22 अलग-अलग तरह के जन्तुओं में लाल-भूरी शैवाल पाई जाती हैं। इससे लगता है कि इस तरह के परस्पर सहयोगी सम्बन्ध किसी एक सामान्य लम्बे सह-विकासीय सम्बन्ध के रूप में विकसित न होकर अलग-अलग समय पर अलग-अलग जीवों में स्वतंत्र रूप से प्रकट हुए होंगे।

उत्पादक (प्रोड्यूसर) और उपभोक्ता (कन्ज़्यूमर) के बीच का यह सम्बन्ध दो-तरफा होता है। हरे स्वपोषी उत्पादक सूक्ष्म जीव (शैवाल) में परपोषी जन्तु के लिए कार्बनिक पदार्थ उपलब्ध कराने की क्षमता होती है। बदले में उपभोक्ता जन्तु उत्पादक को पोषण और कार्यिकीय दृष्टि से उचित पर्यावरण उपलब्ध कराते हैं।

कॉन्वोल्यूटा रोस्कोफेंसिस

http://www.ehu.es/ehusfera/animalia/files/2010/04/Convoluta-roscoffensis.jpg

एक चपटे कृमि *कॉन्वोल्यूटा रोस्कोफेंसिस* और एक हरी शैवाल *प्लेटीमोनास कॉन्वोल्यूटी* के बीच बड़ी ही मज़ेदार रिश्तेदारी है जिसमें एक जीव (कृमि) के व्यर्थ पदार्थ दूसरे जीव (शैवाल) के काम आते हैं।

शैवाल *प्लेटीमोनास कॉन्वोल्यूटी* कृमि को अमीनो अम्ल, अमाइड, वसीय अम्ल, स्टेरॉल और साँस लेने के लिए ऑक्सीजन उपलब्ध कराती है। बदले में जन्तु उसे अपना भोजन बनाने के लिए ज़रूरी कार्बन डाईऑक्साइड देता है। शैवाल को प्रोटीन बनाने के लिए ज़रूरी नाइट्रोजन जन्तु द्वारा उत्सर्जित यूरिक अम्ल से मिल जाती है। शैवाल और जन्तु का यह सहयोगी सम्बन्ध 'बन्द इकोतंत्र' का एक बहुत ही उम्दा उदाहरण है जिसमें पोषक पदार्थों का आदान-प्रदान होता रहता है। यहाँ कार्बन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और ऑक्सीजन का चक्रीकरण जीव के अन्दर ही होता रहता है। एक जीव पदार्थों का संश्लेषण करता है और दूसरा उनका उपभोग। हालत यह है कि इस कृमि का मुँह तक नहीं होता।

प्लेटीमोनास कॉन्वोल्यूटी
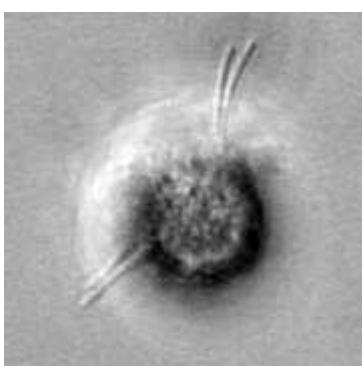
http://enpub.fulton.asu.edu/pwest/myweb/Taste%20and%20Odor%20Stuff/Taxonomic%20guide/Guide_Images/Web_Images/More_Web_Images/Platymonas2-4flagella.gif

कॉन्वोल्यूटा रोस्कोफेंसिस के व्यर्थ पदार्थ हरी शैवाल के लिए पोषक पदार्थों का काम करते हैं। इस तरह एक जीव के व्यर्थ पदार्थ दूसरे जीव के लिए संसाधन बन जाते हैं। प्रकृति में टिकाऊ विकास का इससे श्रेष्ठ उदाहरण और क्या होगा!

✦✦

चींटियों के हवाले पेड़ों की रक्षा

ब्रैकन

http://www.illinoiswildflowers.info/grasses/photos/bracken_fern.jpg

नन्हीं चींटियाँ किसी बड़े जीव की सुरक्षा प्रहरी हो सकती हैं? लगती तो है असम्भव-सी बात। लेकिन जब ये छोटे जीव संगठित, संकल्पित और अनुशासित हों तो इनकी ऐसी शक्तिशाली फौज बन जाती है कि इन्हें देख अच्छे-अच्छों के पसीने छूट जाते हैं। इनकी इस ताकत को पहचानकर कई छोटी-बड़ी झाड़ियों ने, यहाँ तक कि बड़े-बड़े पेड़ों ने भी अपनी सुरक्षा की ज़िम्मेदारी इन्हीं को सौंप रखी है।

वनस्पतियों की ये सुरक्षा प्रहरी यानी चींटी सुरक्षा बल अपनी सेवाओं के बदले केवल रहने के लिए स्थान और थोड़ा-सा भोजन लेती हैं। ये चींटियाँ न सिर्फ कई पौधों को सुरक्षा प्रदान करती हैं बल्कि उनके फलने-फूलने व उनके विकास और विस्तार में भी महती भूमिका निभाती हैं। चींटी और पौधों का यह आपसी रिश्ता बहुत पुराना और रोचक है जो फर्न से लेकर फूलधारी पौधों तक में पाया जाता है। आइए ऐसे ही कुछ उदाहरण देखें।

क्रोज़ियर

http://botanyboy.org/wp-content/uploads/SphenomerisChinensisCZR.jpg

शुरू करते हैं ब्रैकन से। यह एक ऐसी फर्न है जिसे विस्तार और वितरण की दृष्टि से दुनिया का सर्वाधिक सफल पौधा कहा जा सकता है। अंटार्क्टिका, जहाँ वैसे भी बिरली वनस्पतियाँ ही जीवित रह पाती हैं, को छोड़कर दुनिया के सभी महाद्वीपों पर ब्रैकन (*टेरिडियन एक्विलिनम*) के पैर पसरे हुए हैं। बहुत ज़्यादा ठण्ड के अलावा ब्रैकन को किसी से कोई खतरा नहीं। वैसे तो यह एक ज़हरीली फर्न है जिसे खाने से पैर के कैंसर का डर बना रहता है। फिर भी इसकी नई तथा नाज़ुक पत्तियों को जापान में विशेष अवसरों पर खाया जाता है। इसके ज़हरीले होने के बावजूद इसे खाने एवं कुतरने वाले जीव कम नहीं हैं। ब्रैकन की परिपक्व पत्तियों को कुतरना मुश्किल होता है। टैनिन और सिलिका की अधिकता के कारण ये चरने योग्य नहीं रह जाती हैं। लेकिन क्रोज़ियर (हुकनुमा नई पत्तियाँ)

और अपरिपक्व पत्तियाँ नर्म होती हैं। यदि ये कड़क होंगी तो ठीक से खुल नहीं पाएँगी, अतः इनका नाज़ुक होना ज़रूरी है। इस अवस्था में इनमें प्रोटीन की मात्रा भी ज़्यादा होती है। कुतरने/चरने वाले जीवों के लिए यह भोजन का बढ़िया स्रोत होती है। इसलिए इन नाज़ुक पत्तियों की सुरक्षा का मसला परिपक्व पत्तियों की तुलना में ज़्यादा अहम है।

क्रोज़ियर (घड़ी की कमानी की तरह कुण्डलित नई पत्तियों) के ज़मीन से बाहर आने के शुरुआती महीनों में इनकी सुरक्षा कई तरीकों से की जाती है, मसलन इनका ज़हर-बुझा होना। इनमें इक्डायोसोन (जैसे अल्फा इक्डायोसोन और 20-हाइड्रॉक्सी इक्डायोसोन) होते हैं। ये रसायन कीट विमोचन हॉर्मोन (मोल्टिंग हॉर्मोन) हैं। अतः इन पत्तियों को खाए जाने की स्थिति में कीटों के लार्वा की वृद्धि, विकास तथा शंखी अवस्था में से विमोचन विपरीत रूप से प्रभावित होता है।

इनके अलावा पत्तियों में विशेष मकरन्द ग्रन्थियाँ भी पाई जाती हैं। फर्न में इनका पाया जाना वैसे भी आश्चर्यजनक है क्योंकि ये ग्रन्थियाँ मुख्य रूप से फूलधारी पौधों में ही मिलती हैं। इन मकरन्द ग्रन्थियों की ओर चींटियों की एक प्रजाति *मायरिका* आकर्षित होती है। वह मकरन्द पीने आती है। जैसे ही चींटियों को पता चलता है कि कोमल पत्तियों पर मकरन्द है, वे इसकी सुरक्षा में लग जाती हैं और पत्तियों को कुतरने और चरने वाले जीवों को पत्तियों के पास फटकने तक नहीं देती हैं। मौका आने पर ये इन पर आक्रमण भी करती हैं। इस तरह इन पत्तियों की सुरक्षा हो जाती है। ब्रैकन में पाए जाने वाले बचाव के इन तरीकों में से शाकाहारियों को अपने से दूर रखने का कौन-सा तरीका ज़्यादा कारगर और प्रभावी है, यह कहना मुश्किल है।

डैनियल जैनज़ेन

http://www.upenn.edu/pennnews/sites/default/files/imagecache/tiny_thumb/news/images/Janzen_Daniel_Biology_001.jpg

इन सारे ज़हरों, चरे जाने से बचाने वाले रसायनों और चींटी सुरक्षा बल के बावजूद कीटों की लगभग 100 प्रजातियाँ ब्रैकन को कुतर ही लेती हैं; पत्तियों में घुसकर या रस चूसकर। इसके बावजूद ब्रैकन को दुनिया का सर्वाधिक सफल पौधा होने का दर्जा प्राप्त है।

ब्रैकन हो या बबूल, चींटियों ने कई पौधों को सुरक्षा उपलब्ध कराई है। प्रसिद्ध प्रकृति विज्ञानी डैनियल *जैनज़ेन* (Daniel Janzen) ने पहली बार 'एक प्रजाति के लिए एक जीव' जैसे कई जटिल सहसम्बन्धों को उजागर किया था। ऐसा ही एक सम्बन्ध एक चींटी *स्यूडोमायरीमेक्स फेरुजीनिया* और एक बबूल *अकेसिया कॉर्निजेरा* के बीच है। यह प्रकृति की अद्‌भुत कारीगरी का बेजोड़ नमूना है। इन चींटी-पौधा सम्बन्धों को

देखकर बीट्टी (A.J. Beattie, 1985) का कहना है कि "जिस दक्षता से पौधे चींटियों से और चींटियाँ पौधों से व्यवहार करती हैं, वह बेहद जटिल और विलक्षण है।"

बुल्स हॉर्न अकेसिया

http://www.rareflora.com/acaciacollin.jpg

संयुक्त पत्तियों से भरपूर बबूल के पेड़ पर सुन्दर पीले फूलों की बहार आती है। पत्तियों के नीचे फूले हुए अनुपत्र पाए जाते हैं जो तीखे व साँड़ के सीगों की तरह जोड़ों में होते हैं। इसीलिए बोलचाल में इसे *बुल्स हॉर्न अकेसिया* कहा जाता है।

इस अद्भुत रिश्ते की शुरुआत रानी चींटी द्वारा एक ऐसे बबूल के छोटे-से पौधे की खोज से होती है जिस पर अब तक चींटियों का समुदाय स्थापित न हुआ हो। जैसे-जैसे बबूल का पौधा बढ़ता है उसकी पत्तियों के नीचे विशेष प्रकार के अनुपत्र बनने लगते हैं। ये दरअसल तीखे काँटे होते हैं। रानी चींटी इस काँटे को अपना आवास बनाती है तथा इसके लिए वह इसमें एक छेद कर अन्दर का नर्म ऊतक निकालकर पूरे काँटे को खोखला बना देती है।

यहाँ वह अपने अण्डे देती है और फिर पूरे पेड़ पर लगातार चक्कर काटती रहती है। उसे पत्तियों पर उपस्थित मधुग्रन्थियों से मकरन्द प्राप्त होता है। ये मकरन्द ग्रन्थियाँ पत्तियों के मोटे डण्ठल पर ब्रैकन की तरह दो-तीन के समूहों में पाई जाती हैं। रानी चींटी मकरन्द चूसने के अलावा पत्तियों के सिरे पर लगी विशेष रचनाएँ – बेल्टीयन बॉडी – भी इकट्ठा करती है। प्रोटीन व वसा से भरपूर ये रचनाएँ वह अपने लार्वा को खिलाती है। इस तरह बबूल के पेड़ से उसे शर्करा, प्रोटीन व वसा-युक्त पौष्टिक भोज्य पदार्थ के साथ-साथ आवास भी मिलता है।

समय के साथ पेड़ और चींटियाँ दोनों बढ़ते रहते हैं। एक माह पश्चात् समुदाय में लगभग 1200 कामगार चींटियाँ तैयार हो जाती हैं। ये अन्य फूले हुए काँटों में अपना डेरा जमाती हैं। तीन-चार साल में पेड़ की रक्षा हेतु तकरीबन 30,000 चींटियों की एक पूरी फौज तैयार हो जाती है। ये सुरक्षा प्रहरी पूरे पेड़ पर ऊपर नीचे चक्कर लगाकर अपना काम मुस्तैदी से करते हैं और राह में आने वाले कीटों व अन्य कुतरने वाले जीवों पर तुरन्त आक्रमण कर उन्हें भगा देते हैं। यहाँ तक कि अन्य किसी पौधे या बेल तक को पास नहीं फटकने देते। इन पेड़ों के नीचे करीब एक मीटर के घेरे को भी ये चींटियाँ घास-फूस रहित व साफ सुथरा रखती हैं।

प्रयोगों से पता चला है कि यदि किसी तरह इन सुरक्षा गार्डों को हटा दिया जाए तो पत्ती कुतरने वाले जीव और चढ़ने वाली बेलें तुरन्त इन पेड़ों पर चढ़ जाती हैं। ऐसे में बिना चींटी सुरक्षा बल के ये एक-दो वर्षों से अधिक नहीं जी पाते। इस तरह हम देखते हैं कि चींटियाँ पेड़-पौधों की सुरक्षा का कार्य भी बड़ी मुस्तैदी से और सफलतापूर्वक करती हैं। अतः इन नन्हीं चींटियों की क्षमता को कम आँकना समझदारी नहीं होगी।

उल्लेखनीय है कि बबूल की इस प्रजाति में अन्य बबूलों की तरह कड़क तने व कुतरने वाले जन्तुओं को दूर रखने वाले रसायनों का अभाव है। अतः इस प्रजाति के बबूल ने अपनी सुरक्षा की ज़िम्मेदारी इन चींटियों को सौंप रखी है। इस तरह से बची ऊर्जा को ये अपनी तेज़ बढ़वार में लगाते हैं जिससे घने नम जंगलों में अन्य पौधों से प्रतिस्पर्धा की जा सके। इस सुरक्षा के बदले ये अपनी कुछ ऊर्जा फूले हुए अनुपत्र, मकरन्द और बेल्टीयन बॉडी बनाने में भी लगाते हैं।

चींटी-बबूल और फर्न-चींटी के ये सहयोगी सम्बन्ध जीव जन्तुओं के सहविकास के उदाहरण हैं। इनमें ऊर्जा सम्बन्धी श्रेष्ठ व्यवहार की भी झलक मिलती है।

चमेली ने किया जूही को ई–मेल

मोगरे ने जूही से कुछ कहा, चुपके से। चमेली ने कुन्दा से कहा, 'वो आ रहा है।' बेला फूला तो चमन में खबर फैलाई खुशबू ने। दुश्मन आया चमेली को चरने तो हवा से हवा में चला एक कोडवर्ड और सावधान हो गया साथी। तो जनाब ये बेला-चमेली सेज़ ही नहीं सजाते, ई-मेल भी करते हैं एक-दूसरे को – हवा से हवा में।

चमेली की एक प्रजाति है – जेस्मीनम ग्रैंडीफ्लोरम। संस्कृत में इसे चेतकी और उर्दू में चम्बेली भी कहा गया है। परभक्षियों द्वारा इसकी पत्तियों को कुतरने पर एक वाष्पशील तेल निकलता है जिसे जेस्मोनिक अम्ल कहते हैं। यह एक किस्म का हॉर्मोन है जो अन्य पौधों को चराई से बचाने का हवाई सन्देश देता है।

✦✦

शिकारी से बचने की कोशिश में...

कुछ जीव चटख रंगों वाले तो कुछ ऐसे कि अगर पेड़, पत्तों, पत्थर आदि पर बैठ जाएँ तो ढूँढ पाना मुश्किल हो जाए। रंग-रूप में दो विपरीत दिशाएँ परन्तु मंज़िल एक ही – शिकारी से बचाव।

जैव विकास की लगातार चलती प्रक्रिया में शिकार होने से बचने के लिए विभिन्न जन्तुओं में अलग-अलग तरह की क्षमताएँ विकसित हुई हैं। कुछ जन्तुओं का रंग अपने आसपास के वातावरण से इतना मिलता-जुलता है कि उन्हें खोज पाना लगभग असम्भव होता है। इसी तरह कुछ जन्तुओं का रंग उनके आसपास के वातावरण के हिसाब से बदल जाता है। कुछ जन्तु तो इससे भी आगे होते हैं वे रंग की बजाय अपने आसपास मौजूद किसी निर्जीव पदार्थ (जैसे लकड़ी, पत्थर आदि) के समान दिखते हैं, ताकि शिकारी उन्हें देख न पाए या फिर देखकर धोखा खा जाए।

लेकिन इन्हीं क्षमताओं के बीच कुछ जन्तु ऐसे भी हैं जो आसपास के वातावरण के रंगों से बिलकुल उलट, बहुत ही भड़कीले रंग वाले होते हैं। इतने रंगीन कि शिकारी उन्हें दूर से ही पहचान सकता है। ऐसा विरोधाभास क्यों? दरअसल, यही विरोधाभास इनका सुरक्षा कवच है। इनमें से अधिकतर तो इतने बेस्वाद, दुर्गन्ध वाले, ज़हरीले या छूने पर डंक मारने वाले होते हैं, या फिर कोई ज़हरीला पदार्थ फेंकते या छोड़ते हैं, कि एक-दो मुलाकातों के बाद शिकारी पक्षी इन्हें दूर से ही पहचानकर इनके पास नहीं फटकते।

तितली का लार्वा

http://3.bp.blogspot.com/-Sr2O0lM68ZM/TV5aVB1jF7I/AAAAAAAAAvw/e1OO6avilKU/s1600/swallowtail_caterpillar_big.jpg

रंग से जुड़ी चेतावनी

दरअसल, ऐसे रँगीले जन्तुओं से एक-दो मुलाकातों के बाद शिकारी इनके स्वभाव से वाकिफ हो जाते हैं और तीखे रंगों की वजह से इन्हें पहचानकर दूर रहना ही ठीक समझते हैं। कई बार तो मुलाकात इतनी अप्रिय

होती है कि शिकारी इन जन्तुओं से मिलते-जुलते पैटर्नों वाले जन्तुओं से भी दूर ही रहते हैं। विज्ञान की भाषा में इसे 'चेतावनी रंग' (warning colouration) कहा जाता है।

जन्तुओं के इस तरह के व्यवहार को समझने के लिए वैज्ञानिक जी.डी.एच. कारपेंटर (G. D. H. Carpenter) ने एक प्रयोग किया था। उन्होंने एक कीटभक्षी बन्दर को खाने में 200 तरह के कीट परोसे। बन्दर ने 83 प्रतिशत तो ऐसे कीटों को खाया जो छद्मवेशी[1] रंगों के थे और भड़कीले रंग वाले (चेतावनी रंग वाले) सिर्फ 16 प्रतिशत कीटों को खाया। उल्लेखनीय बात यह थी कि भड़कीले रंगों वाले कई कीट तो ऐसी प्रजातियों के थे जिन्हें बन्दर ने पहले कभी देखा तक नहीं था। इसको देखकर यह समझ में आता है कि रंगीन खतरों से जुड़ी सीख पूरी तरह केवल पूर्व अनुभवों पर आधारित नहीं होती। ऐसा लगता है कि वे शिकारी जीव फायदे में रहते हैं जिनके पास चमकदार रंगों से बचने की आनुवंशिक क्षमता होती है।

मोनार्क तितली

http://www.learner.org/jnorth/images/graphics/monarch/ID_Wilcox02.jpg

चेतावनी देने वाले रंगीन वेश का फायदा इन्हीं से मिलते-जुलते जीवों को भी मिल जाता है जो न तो बेस्वाद होते हैं, न ज़हरीले; जैसे वाइसरॉय तितली (*लिमेनिटिस आर्चीपस*) को मोनार्क तितली (*डेनस प्लेक्सीपस*) जैसा दिखने का फायदा मिलता है। मोनार्क के पंख चमकदार नारंगी-काले होते हैं। वैज्ञानिक इन रंगों को चेतावनी देने वाले रंगों की श्रेणी में रखते हैं। वाइसरॉय रंगों के मामले में बिलकुल मोनार्क जैसी दिखती है।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक जेन ब्रॉअर (Jane Brower) ने इस पहलू को जाँचने के लिए कुछ प्रयोग किए। पहले प्रयोग में उन्होंने नीलकण्ठ (ब्लू जे) नाम के कुछ पक्षियों को वाइसरॉय तितली पेश की। पक्षी ने इन्हें बड़े मज़े से खा लिया। इसके बाद उन्होंने ब्लू जे को मोनार्क तितली दी जो अपने शरीर में मौजूद एक ज़हरीले पदार्थ के कारण बहुत बेस्वाद होती है। ब्लू जे ने मोनार्क को खाने के तुरन्त बाद उल्टी कर

---

1. *ऐसे जीव जिनका रंग उनके परिवेश के अनुसार ढल गया होता है।*

वाइसरॉय तितली

http://www.ohio-nature.com/image-files/viceroy-butterfly-lg.jpg

दी। और एक-दो बार के ऐसे ही अनुभवों के बाद तो उसने मोनार्क को खाने से ही इन्कार कर दिया। अब दुबारा उन्हें वाइसरॉय परोसी गई। लेकिन उन्होंने इसे भी नहीं खाया, जबकि पहले इसी को उन्होंने बड़े मज़े से खाया था। इन दोनों प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चेतावनी रंगों से बचने की क्षमता आनुवंशिक या अनुभवजन्य दोनों हो सकती है।

नीलकण्ठ

लेकिन रंगीन चेतावनी वाले वेश के बाद भी क्या ये जीव पूरी तरह शिकारियों से बच पाते हैं?

जैसे, मोनार्क को ही देखें। सभी मोनार्क तितलियों में समान मात्रा में ज़हर नहीं होता – बल्कि कुछ में कम और कुछ में बिलकुल भी नहीं। शायद मेक्सिको के कुछ पक्षियों ने इस अन्तर को जान लिया है। इसीलिए वे ऐसी तितलियों को चोंच मारकर चख लेते हैं कि इसमें ज़हर है कि नहीं – अगर ज़हरीली है तो फेंक दिया, वरना खा लिया। इसके अलावा वे शायद यह भी करते हैं कि कम ज़हरीली मोनार्क के शरीर के उन हिस्सों को खा लिया जहाँ ज़हर की जमावट सबसे कम होती है, और बाकी हिस्से को फेंक दिया।

इस सबको देखकर कहा जा सकता है कि प्रकृति में सुरक्षा का कोई भी तरीका सौ फीसदी बचाव नहीं करता। लेकिन इनकी वजह से ज़िन्दा रहने की सम्भावना बढ़ जाती है।

✦✦

मिल्कवीड और मोनार्क

मोनार्क तितलियाँ कई पक्षियों की तरह प्रवासी हैं। ये संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा से उड़कर मेक्सिको पहुँचती हैं, जहाँ ये मिल्कवीड पर अपने अण्डे देती हैं।

हल्दीकुंकु (मिल्कवीड – एसक्लेपिया) एवं आक (अकौआ या अकाव या कैलोट्रोपिया) ज़हरीले पौधे हैं। इनमें कैलोट्रोपीन नामक एक कार्डिएक ग्लायकोसाइड होता है जो ज़हरीला होता है। अधिकांश मोनार्क तितलियाँ इस पौधे पर अण्डे देती हैं। तितली का लार्वा न सिर्फ इस ज़हर को पचा लेता है बल्कि यह ज़हर उसके शरीर के ऊतकों में जमा हो जाता है, जो वयस्क अवस्था में भी तितली के शरीर में मौजूद होता है। इस तरह मोनार्क तितली पौधे में विकसित सुरक्षा प्रणाली का अपने लिए भी उपयोग कर लेती है। लेकिन जैव विकास की दृष्टि से शायद उसे इसकी कीमत भी चुकानी पड़ती है। स्वाभाविक है कि उसकी अपनी ऊर्जा का कुछ हिस्सा इस ज़हर को इकट्ठा करने और उसे ठीक तरीके से जमाने में खर्च होता है। यदि यह ऊर्जा इस काम पर खर्च न होती तो शायद लार्वा की वृद्धि तेज़ी से होती और वह अधिक तगड़ा वयस्क बनता। इस उदाहरण से यह पता चलता है कि विकास और सुरक्षा की कोई न कोई कीमत चुकानी ही पड़ती है।

दूसरी ओर, कुछ मोनार्क मादाएँ अपेक्षाकृत कम ज़हरीले पौधों पर भी अण्डे देती हैं या फिर ऐसे पौधों पर जो बिलकुल भी ज़हरीले नहीं होते। वैज्ञानिकों का मानना है कि पौधे का चुनाव शायद जैव विकास की पूरी प्रक्रिया से जुड़ा है। इसका निर्णय मादाएँ शायद इस आधार पर करती हैं कि उनके झुण्ड की दूसरी मादाएँ कहाँ अण्डे दे रही हैं। यदि अधिकतर ज़हरीले पौधों पर अण्डे दे रही हैं तो वे कुछ ऐसे पौधों पर देती हैं जिनमें ज़हर नहीं है। तो निश्चित है कि उनसे जो वयस्क बनेंगे वे खाने अयोग्य नहीं होंगे। लेकिन रूप और रंग समान होने की वजह से शिकारी पक्षियों से उनके बचने की सम्भावना उतनी ही है जितनी कि समूह के दूसरे सदस्यों की।

पत्तियों को कुतरने वाले जीवों से बचाते हैं टैनिन

टैनिन पौधों में पाए जाने वाले पदार्थों के एक समूह का नाम है। ये पदार्थ कच्चे चमड़े को पकाकर उससे पक्का चमड़ा बनाने के काम आते हैं। ये पेड़ों की छाल में प्रमुखता से मिलते हैं।

पशुओं की त्वचा मूलतः कोलाजेन नामक प्रोटीन से बनी होती है। वैसे ही छोड़ दिया जाए तो सूक्ष्मजीव इस पर हमला कर देते हैं और इसे पचा डालते हैं। लेकिन टैनिन प्रोटीन के साथ इतने मज़बूत रासायनिक बन्धन बनाते हैं कि सूक्ष्मजीवों के पाचक एन्ज़ाइम तक इसे नहीं पचा सकते। चमड़े को पकाने की क्रिया में यही होता है। टैनिन के उपयोग के कारण ही इस प्रक्रिया को टैनिंग कहते हैं।

टैनिन का स्वाद अप्रिय कसैला होता है। ये मुँह की लार और म्यूकस झिल्ली के साथ मिलकर मुँह को सुखा देते हैं। इस असर को ऐस्ट्रिंजेंट प्रभाव कहते हैं। इसके चलते जो कसावट पैदा होती है उसके कारण पशु ऐसे पौधों से दूर ही रहते हैं जिसमें टैनिन ज़्यादा मात्रा में होते हैं।

यदि आपने कच्ची सुपारी खाई हो तो देखा होगा कि पहली बार खाने पर गला बन्द होता-सा लगता है, लगभग रुन्ध जाता है और थूक भी नहीं उतरता। टैनिन-युक्त पत्तियाँ खाने पर पशुओं के साथ भी यही होता है। इसी कारण पशु टैनिन-युक्त पत्तियाँ खाने से बचते हैं। इसके अतिरिक्त जब वे टैनिन-युक्त पत्तियाँ खाते हैं तब पेट में पहुँचकर पत्तियों में उपस्थित प्रोटीन टैनिनों से जुड़ जाता है और अपचनीय हो जाता है। और तो और, टैनिन शाकाहारी जीवों के पेट और आँतों में उपस्थित एन्ज़ाइमों से क्रिया करके उन्हें अपना काम करने से रोकते हैं।

सुपारी – टैनिन का भण्डार

इन कारणों से चरने वाले पशुओं से पौधों को बचाने में टैनिन बहुत प्रभावी होते हैं। इसका एक बढ़िया उदाहरण दक्षिण अफ्रीका के सवाना में रहने वाले हिरण कुडु का है। यहाँ पाए जाने वाले अकेसिया (बबूल) की पत्तियाँ इसका प्रमुख भोजन है। इन पत्तियों में टैनिन होते हैं। इसकी थोड़ी मात्रा से हिरन के पोषण की गुणवत्ता पर प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु जब हिरन पत्तियाँ कुतरता है तब अकेसिया की इन क्षतिग्रस्त पत्तियों से एथिलीन गैस निकलती है। एथिलीन एक हॉरमोन है जो तनाव के कारण पैदा होता है। पौधा जब कुतरे जाने के तनाव में रहता है तो एथिलीन गैस छोड़ने लगता है। इस गैस के निकलने के 30 मिनट के अन्दर आसपास के अकेसिया पौधों में खूब टैनिन बनने लगते हैं। ज़्यादा पत्तियाँ खाई जाती हैं तो पौधा इतने टैनिन बनाता है कि इन पत्तियों को खाने से हिरनों की मृत्यु भी हो जाती है।

जूही फूल

इस तरह से बबूल के ये पेड़ पत्तीविहीन होने से बच जाते हैं। यह *अकेसिया* का चेतावनी तंत्र है। एक को कुतरा जाता है तो दूसरों के लिए सावधान होने के संकेत छोड़े जाते हैं। इन कसैले पेड़ों के पास वाणी नहीं है, वाणी से ज़्यादा शक्तिशाली रासायनिक सन्देश तो हैं।

टैनिन पौधों को सूक्ष्मजीवों के आक्रमण से भी बचाते हैं। जैसे ही पौधों पर सूक्ष्मजीवियों का आक्रमण होता है, वे टैनिन बनाने लगते हैं। इससे सूक्ष्मजीवियों के एन्ज़ाइम निष्क्रिय हो जाते हैं। टैनिन कुतरने वाले कीटों को पत्तियों से दूर रखने में भी सहायक होते है। टैनिन काष्ठीय पौधों, विशेष रूप से पेड़ों में बहुतायत में पाए जाते हैं।

टैनिन और बांज के पेड़

बांज यानी ओक पश्चिमी यूरोप के पतझड़ी वनों का एक प्रमुख पेड़ है। हमारे यहाँ भी हिमालय एवं तराई के क्षेत्रों में ओक मिलता है। ओक के पेड़ पर 200 से अधिक प्रकार के कीटों के लार्वा डेरा जमाते हैं और इसकी पत्तियाँ कुतरते हैं। ओक पर कीटों का प्रकोप वसन्त में ज़्यादा होता है। उसे प्रभावित करने वाला सबसे आम कीट है विंटर मॉथ। इसके लार्वा मई माह तक इसकी पत्तियों को खाते हैं और मई के अन्त तक ज़मीन पर गिरकर प्यूपा में बदल जाते हैं। इकॉलॉजीविद् पी. फीनी (P. Feeny) ने देखा कि ये लार्वा ओक की पत्तियों को वसन्त में तो बड़े

मज़े से खाते हैं परन्तु गर्मी में जून के मध्य तक इसे छोड़ दूसरे पेड़ों का रुख कर लेते हैं। उन्हें यह समझ नहीं आया कि वे ऐसा क्यों करते हैं। इस बदले हुए व्यवहार को समझने के लिए उन्होंने पत्तियों का परीक्षण किया तो पता चला कि ओक में वसन्त और गर्मियों में लगने वाली पत्तियों में टैनिन में बहुत अन्तर होते हैं। ये अन्तर टैनिन की मात्रा में भी थे और उनके प्रकार में भी। एक तो टैनिनों के कसैले स्वाद के कारण ये लार्वा जून में इन पत्तियों को छोड़ दूसरे पौधों पर चले जाते हैं। दूसरी बात यह है कि टैनिन की अधिकता के कारण प्रोटीन अपाच्य हो जाता है और लार्वा के पेट में पचता नहीं। तो ऐसे भोजन को खाने से क्या फायदा जो पोषण न दे। इस तरह से ओक की पत्तियों में बढ़े हुए टैनिन उन्हें कुतरे जाने से बचाते हैं। मगर लार्वा इन पत्तियों को खाने पर आमादा होता है। यह कैसे सम्भव है?

विंटर मॉथ का लार्वा

http://massnrc.org/pests/blog/wp-content/uploads/IMG_19961.jpg

प्रोटीन को अपाच्य बनाने का काम टैनिन अम्लीय माध्यम (pH 4.2) में भलीभाँति करते हैं। pH बढ़ जाए यानी माध्यम क्षारीय होने लगे तो टैनिनों की यह भूमिका कमज़ोर पड़ जाती है। विंटर मॉथ के लार्वा की आँत में pH मान 9.2 पाया गया है। यह क्षारीय स्थिति का द्योतक है। इतनी अधिक pH पर लार्वा प्रोटीन-टैनिन संकुल से नाइट्रोजन प्राप्त कर लेता है। यह एक तरह से लार्वा का अनूकूलन ही है। तू डाल-डाल, मैं पात-पात। एक तरफ ओक की पत्तियों में कुतरे जाने के दबाव में टैनिनों की मात्रा बढ़ी तो दूसरी ओर विंटर मॉथ लार्वा की आँत का pH मान बढ़ जाने से इसका तोड़ निकल आया। प्रकृति में शिकार और शिकारी दोनों के अपने-अपने दाँव-पेंच चलते रहते हैं। और इसका परिणाम होता है समान्तर सहविकास।

जो बात विंटर मॉथ लार्वा के लिए सही है वह ओक पर पलने वाले अन्य कीट लार्वा पर भी लागू होती है। शुरुआती जून माह में ओक के पेड़ पर कम से कम 110 कीट प्रजातियों के लार्वा होते हैं जबकि मध्य अगस्त तक यह संख्या घटकर केवल 65 रह जाती है। इसी तरह ओक पर मिलने वाले वयस्क कीटों की संख्या में भी उल्लेखनीय कमी आ जाती है। जहाँ लार्वा की संख्या एवं प्रकार घटने में टैनिन की मात्रा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, वहीं उम्र के साथ पत्तियों का बढ़ता कड़कपन भी ज़िम्मेदार होता है।

लीफ माइनर
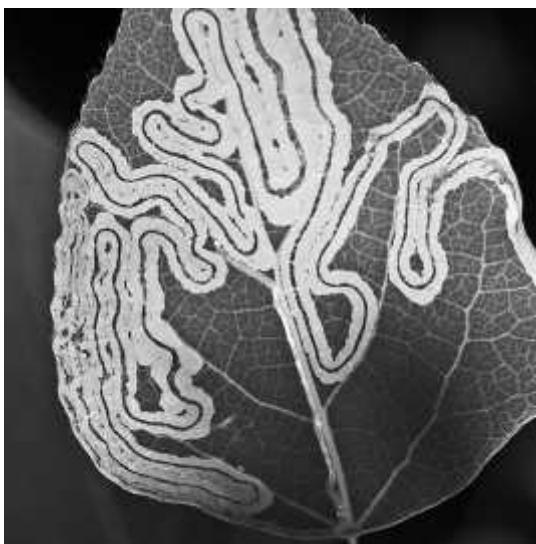
http://3.bp.blogspot.com/-zH-lWaJuFcY/TjrPiz2X5XI/AAAAAAAAAUA/mcxb5_0d3t8/s1600/34301109_3171f31c24.jpg

अतः यह स्पष्ट है कि पेड़ों में कीटों के आक्रमण से निपटने के लिए और अपने को पत्तीविहीन होने से बचाने के लिए अधिक मात्रा में टैनिन बनते हैं। कुछ अन्य कीटों में पत्तियों में उपस्थित टैनिन की अधिकता से निपटने का एक तरीका यह पाया गया है कि उनकी वृद्धि धीमी होती है। यह कम प्रोटीन उपलब्धता के लिए एक अनुकूलन है। कुछ अन्य कीट (जैसे लीफ माइनर) हैं जो पत्ती के ऐसे ऊतकों को खाते हैं जिनमें टैनिन की मात्रा कम होती है (जैसे मीज़ोफिल कोशिकाएँ)। ये कीट पत्तियों के अन्दर ही रहकर ऊतकों को कुतरते हैं और उन पर साँप जैसी आकृतियाँ बना देते हैं।

इस तरह हम पाते हैं कि ओक के पेड़ में पत्तियों को चरने वाले जीवों से बचाने के लिए टैनिन बनने से रासायनिक सुरक्षा और पत्तियों के सख्त हो जाने से भौतिक सुरक्षा की व्यवस्था हो जाती है। वहीं कुतरने वाले जीवों में इसका समाधान यह निकला है कि वे वसन्त में ही नरम पत्तियों को खाकर अपना जीवन पूरा कर लेते हैं या उनके जीवन चक्र में ही परिवर्तन हो जाता है और वे यह लार्वा अवस्था गर्मी में पूरा करते हैं।

चींटियों और उपरिरोही के परस्पर सम्बन्ध

जन्तुओं और पौधों के बीच विभिन्न किस्म के सहयोगी सम्बन्ध देखे गए हैं। ऐसे ही कुछ सम्बन्ध उच्च श्रेणी के पौधों और नन्हे व सामाजिक जीव – चींटियों – के बीच खोजे गए हैं। पौधों और चींटियों का यह रिश्ता पोषक एवं सुरक्षात्मक होता है। चींटियाँ अधिकांशतः मधु एवं परागकणों की तलाश में पौधों के चक्कर लगाती हैं। यह इनका मुख्य भोजन है।

चींटियों की उपस्थिति के कारण पौधों को अन्य जन्तुओं से सुरक्षा मिल जाती है। परन्तु अधिकांश पौधों में यह सम्बन्ध विशिष्ट नहीं है और न ही स्थाई। चींटियों और पौधों का यह रिश्ता एकदम मौसमी होता है। इन पौधों में मधु भी उन्हीं दिनों में बनता है जब इन्हें सुरक्षा और सहायता की ज़रूरत होती है। सक्रिय मधु ग्रन्थियाँ नई-नई शाखाओं, नई पत्तियों और खिलते हुए फूलों के आसपास ही बनती हैं। यही कारण है कि चींटियाँ भी इन्हीं अंगों के आसपास नज़र आती हैं।

लेकौनॉप्टेरिस

कुछ विशेष किस्म के पौधों और चींटियों का यह सम्बन्ध स्थाई हो चुका है। ऐसे पौधों पर चींटियाँ अपना घर बनाकर स्थाई निवास करती हैं। ऐसे अधिकांश पौधे उपरिरोही (यानी किसी बड़े पेड़ पर उगने वाले एपिफाइट्स) होते हैं। कुछ लोग इन्हें अधिपादप भी कहते हैं। सरसरी तौर पर तो ऐसा लगता है कि ये परजीवी पौधे हैं। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है क्योंकि परजीवी पौधों की तरह ये दूसरे पौधे से अपना भोजन प्राप्त नहीं करते। ये तो केवल उनसे रहने के लिए स्थान ही प्राप्त करते हैं और अन्य हरे पौधों की तरह अपना भोजन स्वयं बनाते हैं।

इनकी जड़ों का ज़मीन से कोई सम्पर्क नहीं होता। एक तरह से ये हवा में ही रहते हैं। कुल मिलाकर ये बड़ी विकट परिस्थितियों में अपना जीवन गुज़ारते हैं। ऐसे में अगर

कहीं से कोई सहारा मिल जाए तो मुश्किलें आसान हो जाती हैं। यहाँ-वहाँ लटके-चिपके इन पौधों को तिनके का सहारा ही काफी होता है, जो इन्हें चींटियों से मिलता है। नन्हीं चींटियों और उपरिरोही पौधों का यह सम्बन्ध सदियों पुराना है। चींटियों से इस प्रकार का सम्बन्ध जोड़ने वाले पौधों में फर्न (पंखनुमा पत्तीदार पौधे) से लेकर बीजधारी तक सभी प्रकार के पौधे शामिल हैं। इनमें रहने वाली चींटियों की एक विशेषता यह भी है कि पेड़ों पर रहने वाली सुरक्षात्मक चींटियों की भाँति ये आक्रामक नहीं होतीं।

इन पौधों में चींटियाँ पत्तियों, पत्तियों के आधार, फूले हुए कन्द-मूलों में अपना घर बनाती हैं। इस हेतु इन अंगों में कुछ विशेष परिवर्तन भी देखे गए हैं। कुछ पौधों, जैसे मायरीमीकोडिया के जड़-कन्द में बड़े व्यवस्थित एवं सलीकेदार चींटीघर बने होते हैं जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है। इन चींटीघरों में आने-जाने के रास्ते, लार्वा के रहने के लिए विशेष स्थान, और तो और कचरा अलग रखने की जगह भी होती है। पौधों की इन कन्दिल रचनाओं में ताज़ी हवा के आने-जाने का भी पुख्ता प्रबन्ध होता है।
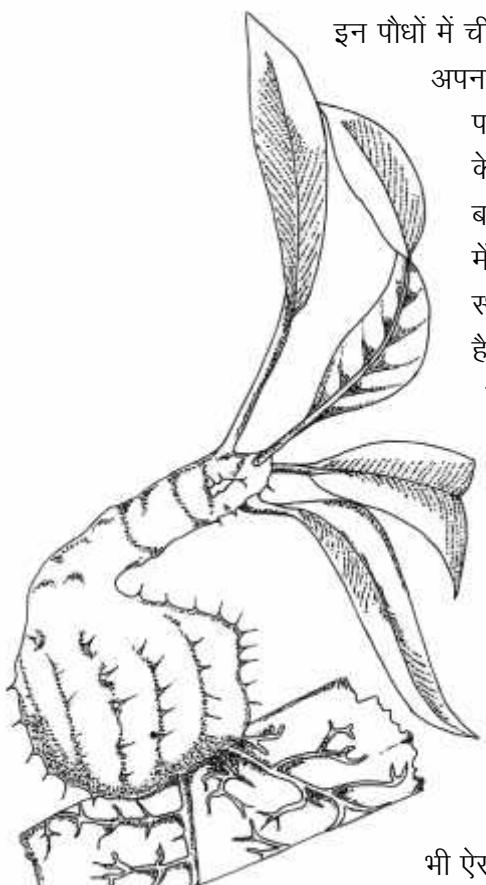
इसके अलावा इन चींटीघरों की आन्तरिक सतह भी दो प्रकार की होती है – अवशोषी और गैर-अवशोषी। चींटियाँ अपने लार्वा को गैर-अवशोषी जगहों पर और बचे हुए कूड़े-कचरे को अवशोषी जगह पर रखती हैं। पौधों और चींटियों के ऐसे सम्बन्ध टिलेंडसिया, मायरीमीकोडिया, डिस्चिडिया और कई उपरिरोही फर्नों में देखे गए हैं। इस रिश्ते में चींटियों को तो रहने के लिए सुरक्षित स्थान मिलता है परन्तु इन पौधों को चींटियों को अपने पास रखने का क्या फायदा? और वह भी ऐसी स्थितियों में जब इनका अपना ही कोई पक्का ठिकाना नहीं है। कभी इस पेड़ पर चिपके तो कभी उस पेड़ पर लगे।

मायरीमीकोडिया

अध्ययनों से पता चला है कि इन पौधों को चींटियों के साथ से कई फायदे हैं। एक तो यह है कि चींटी-युक्त पौधों के प्रकन्दों की फफोलेदार सतह से पानी का अवशोषण चिकनी सतह की तुलना में ज़्यादा होता है। उल्लेखनीय है कि चींटियों की वजह से इन पौधों के नीचे का भाग फूलकर कन्दिल एवं फफोलेदार हो जाता है।

वैज्ञानिकों ने यह भी पता लगाया है कि पानी के अलावा इन जगहों से अन्य पोषक पदार्थों का अवशोषण भी बेहतर होता है। मतलब यह कि चींटियों के कारण ज़मीन से उजड़े इन पौधों को पानी और पोषण दोनों मिलते हैं। पोषण का मुख्य स्रोत चींटियों द्वारा लाई गई सामग्री और इनके द्वारा छोड़े गए उत्सर्जी पदार्थ होते हैं। इस तरह इन्हें कार्बनिक एवं अकार्बनिक दोनों पदार्थ मिल जाते हैं। इन पौधों की अन्दरूनी फफोलेदार सतह पर फफूँद भी उगती देखी गई है जिसे चींटियों द्वारा खाया जाता है। फफूँद से निकले एन्ज़ाइम वहाँ पड़े कार्बनिक कचरे को पचाने में सहायता भी करते हैं। इस दिशा में कार्यरत वैज्ञानिक डिक्सन (A.F.G. Dixon) का कहना है कि चींटियाँ अपनी आवश्यकता से कुछ ज़्यादा ही भोजन सामग्री इकट्ठा करके लाती हैं। इस तरह बचे हुए भोजन के सड़ने गलने से पौधों को आवश्यक पोषण मिलता रहता है।

मायरीमीकोडिया और हायड्नोफायटम पर किए गए शोध कार्यों से पता चला है कि चींटियों की उपस्थिति के कारण इन पौधों की वृद्धि ज़्यादा तेज़ी से होती है। साथ ही जीवन के संघर्ष में इनके सफल होने की सम्भावनाएँ भी उज्ज्वल होती पाई गई हैं। पोषण के अतिरिक्त इन पौधों को चींटियों की उपस्थिति के कारण चरने वाले या पत्ती कुतरने वाले कीटों से भी सुरक्षा मिलती है। इस तरह इन्हें दोहरा लाभ होता है।

मायरीमीकोडिया के अन्दर चींटीघर

एक अन्य पौधे डिस्चिडिया में तो इसकी कुछ पत्तियाँ मुड़कर आपस में जुड़ जाती हैं जिससे एक लम्बी घड़ेनुमा रचना बन जाती है। इन पत्तियों में *इरीडो-मायरीमैक्स कॉरडेटस* नाम की चींटियाँ रहती हैं। ये अपने लार्वा को खिलाने के लिए बाहर से पत्तियाँ, जन्तुओं के छोटे-छोटे टुकड़े और मिट्टी के कण लाकर इन घड़ों में जमा करती हैं। यह देखा गया है कि तने से निकलने वाली विशेष जड़ें
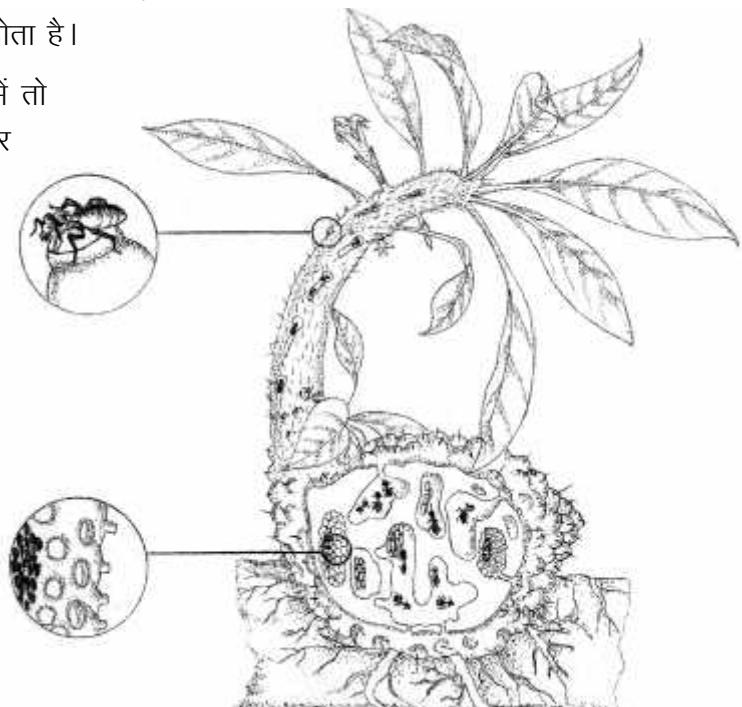
उन्हीं घड़ों में ज़्यादा फैलती हैं जिनमें पर्याप्त मात्रा में कार्बनिक पदार्थ भरा होता है। इन पत्ती-घड़ों से पोषक पदार्थ एवं वर्षा काल में भरा जल सोखने के लिए यह एक उम्दा व्यवस्था है। उल्लेखनीय है कि इस पौधे में ज़मीन से जोड़ने वाली मुख्य जड़ नहीं होती है।

पत्ती-घड़ों में भरे जल को बचाए रखने के लिए इन घड़ों की आन्तरिक सतह पर मोम की तह चढ़ी होती है। इसके अतिरिक्त इनकी अन्दरवाली सतह पर सक्रिय वायु छिद्र भी पाए जाते हैं। इनकी सहायता से ये घड़े के अन्दर चींटियों, लार्वा, और कार्बनिक पदार्थों के सड़ने-गलने से निकलने वाली कार्बन डाईऑक्साइड का उपयोग भोजन बनाने में करते हैं।

इस तरह हम पाते हैं कि इस चींटी-पौधा सहयोगी सम्बन्ध में दोनों को लाभ मिलता है। चींटियों को ज़मीन के ऊपर सुरक्षित घर मिल जाते हैं। इससे ये ज़मीन पर रहने की स्थिति में होने वाली आपसी प्रतिस्पर्धा से भी बच जाती हैं। कुछ पौधों पर पाई जाने वाली कँटीली रचनाओं के कारण चींटियों की छिपकलियों और शिकारी चिड़ियों से भी रक्षा हो जाती है। बढ़िया हवादार घर एवं सुरक्षा के अतिरिक्त डिस्चिडिया के तेल-युक्त बीज, पत्तीनुमा विशेष पोषक रचनाएँ, मधु और लेकैनॉप्टेरिस के बीज जैसा तरह-तरह का भोजन भी इन्हें उपलब्ध रहता है। यानी इन चींटियों को ऐसे पौधों से सम्बन्ध जोड़ने से फायदा ही फायदा है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि पौधों को चींटियों की तुलना में ज़्यादा लाभ है क्योंकि चींटियों से पौधों को सुरक्षा और पोषण के अलावा एक महत्वपूर्ण फायदा और मिलता है। यह है ऐसे वास स्थानों पर सफलतापूर्वक रह पाना जो बिना चींटियों की सहायता के सम्भव नहीं है। हायड्नोफायटम एवं डिस्चिडिया का हल्की एवं कमज़ोर मिट्टी में अपेक्षा से अधिक संख्या में मिलना इसका प्रमाण है। इन स्थानों पर वनस्पतियों का घनत्व कम होने से बहकर आने वाले पानी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बहुत कम होती है जो चींटियों की सहायता से पूरी हो जाती है। इन पौधों का ऐसी विषम परिस्थितियों में एक विस्तृत भू-भाग पर पाया जाना इस सम्बन्ध की सफलता की एक बेजोड़ कहानी है।

नकलची पौधे

नकल करना मनुष्य का एक खास गुण है। कुछ लोग इसमें माहिर होते हैं। उन्हें मिमिक्री आर्टिस्ट भी कहा जाता है। लेकिन यह नकल मात्र हास्य-व्यंग्य के लिए की जाती है।

हमारे आसपास के जीवजगत् पर नज़र डालें तो मिमिक्री के अनेक उदाहरण दिखाई दे जाते हैं। लेकिन ये मिमिक्री अक्सर शिकार को फँसाने के लिए या शिकार से बचने के लिहाज़ से की जाती है। जब आमने-सामने की लड़ाई में पार पाना मुश्किल हो तब मिमिक्री एक अच्छा तरीका हो सकता है। इसमें नकलची शिकारी को धोखा देकर बच निकलने में कामयाब होता है। ऐसे नकलची जीव सामान्यतः सीधे-सादे, रक्षा-विहीन एवं खाने योग्य होते हैं। इसलिए यह स्वाभाविक है कि आसपास के किसी खतरनाक या ज़हरीले जीव के हावभाव या रंगों की नकल शिकारी से बचने में फायदेमन्द साबित हो सकती है। ऐसी नकलपट्टी को सुरक्षात्मक रंग-विन्यास कहते हैं। इस प्रकार की मिमिक्री को इसके खोजकर्ता ब्रिटिश प्रकृतिवेत्ता हेनरी वॉल्टर बेट्स (Henry Walter Bates) के सम्मान में बेट्सीयन मिमिक्री कहा जाता है।

मोनार्क

इसका एक सामान्य उदाहरण आपने पिछले एक लेख में देखा है जो हमारे आसपास भी मिलता है। वाइसरॉय तितली का रंग-रूप ज़हरबुझी एवं बेस्वाद मोनार्क तितली जैसा होता है। इन दोनों तितलियों के रंग-रूप में इतनी समानता होती है कि पहली नज़र में शिकारी इसे खतरनाक मोनार्क समझकर खाने का इरादा छोड़ देता है, जिससे वाइसरॉय के बचने के मौके बढ़ जाते हैं।

वाइसरॉय तितली
सभी मोनार्क में ज़हर की मात्रा एक जैसी नहीं होती है। कुछ अध्ययनों में यह भी देखा गया है कि कुछ पक्षी ज़हरीली और कम ज़हरीली मोनार्क में अन्तर करके कम ज़हरीली मोनार्क के कुछ हिस्सों को खा लेते हैं। या कभी मोनार्क को चोंच मारकर टेस्ट कर लेते हैं — तितली
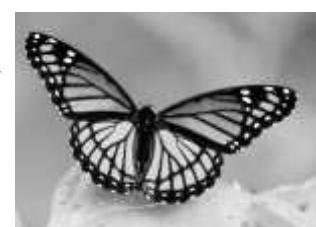
ज़हरीली हुई तो उसे छोड़ दिया, नहीं तो खा लिया। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वाइसरॉय को मिमिक्री की वजह से पक्षियों से सौ फीसदी सुरक्षा मिल जाती है।

जीवों में नकलपट्टी का एक प्रकार ऐसा है जिसमें एक जीव दूसरे अखाद्य जीव की नकल करता है और रूप-रंग की समानता से शिकारी धोखे में आ जाता है। इस प्रकार की मिमिक्री को इसके प्रवर्तक जर्मन प्रकृतिशास्त्री फ्रिट्ज़ मुलर (Fritz Muller) के सम्मान में मुलेरीयन मिमिक्री कहते हैं।

परन्तु कुछ जन्तु ऐसे भी हैं जिनके लिए जन्तुओं की बजाय पौधों की मिमिक्री कारगर साबित होती है। जैसे स्टिक इंसेक्ट, जो सूखी टहनी पर बैठा बिलकुल पौधे की टहनी-सा नज़र आता है। दूसरा उदाहरण है लीफ इंसेक्ट, जो बिलकुल एक जीवित चमकीली हरी पत्ती की तरह दिखता है; और-तो-और, इसके पंखों पर पत्तियों की तरह शिरा विन्यास तक दिखाई देता है। यदि आपने गौर किया हो तो मैदानी इलाकों में पतझड़ के मौसम में ज़मीन पर गिरी सूखी पत्तियों के बीच एक तितली अक्सर दिखाई दे जाती है। जब यह ज़मीन पर गिरी हुई सूखी पत्तियों पर बैठ जाती है तो उसे खोज पाना मुश्किल होता है।

प्राणी विज्ञान में मिमिक्री के अनेक उदाहरण मिल जाएँगे। लेकिन क्या वनस्पति जगत् में भी मिमिक्री इतनी ही आम रणनीति है? यह सवाल जब उठा तभी से मैं सोच रहा था कि एक जगह स्थिर रहने वाले पेड़-पौधे अपनी मिमिक्री में क्या-क्या करते होंगे और क्यों करते होंगे?

वनस्पतियों में मिमिक्री की रणनीति तो है लेकिन यह हमेशा शिकारी से बचाव के सन्दर्भ में नहीं होती। कुछ पौधों में बचाव एक प्रमुख कारण होता है तो कुछ में परागण क्रिया के सन्दर्भ में मिमिक्री पाई जाती है। आम तौर पर वनस्पतियों में मिमिक्री ज़्यादातर पत्तियों, तनों व फूलों में देखी गई है। इससे वनस्पति को चरने-कुतरने वाले जन्तुओं से सुरक्षा मिलती है।

सुरक्षात्मक नकलपट्टी (मिमिक्री)

इस तरह की नकल का बढ़िया उदाहरण है *लिथोप* यानी स्टोन प्लांट। ये रेगिस्तानी पौधे जीव-जन्तुओं की नहीं, निर्जीव पत्थरों की नकल करते हैं। चितकबरे, गोल-बेलनाकार, भूरे रंग के पत्थरों के बीच इन्हें ढूँढना आसान नहीं होता। दरअसल इनका शरीर मांसल, चितकबरी, संगमरमरी दो-चार पत्तियों का ही बना होता है जो लगभग पारदर्शी होती हैं। इससे

उनके अन्दर प्रकाश जाने से भोजन बनता रहता है। वर्षा ऋतु में इन पत्थरनुमा पौधों पर सुन्दर पीले और गुलाबी फूल खिलते हैं। फूल खिलने पर ही पता चलता है कि ये पत्थर नहीं पौधे हैं। वर्षा उपरान्त फूल सूख जाने के बाद ये पुनः पत्थर-से हो जाते हैं।

लिविंग स्टोन

http://www.lithops.net/images/Lithops_photos/Lifu%20v%20la3.JPG

स्टोन प्लांट का यह रूप परिवर्तन उन्हें शाकाहारी जन्तुओं के खतरे से बचाता है। गर्मियों में जब रेगिस्तान की सारी वनस्पतियाँ सूख जाती हैं तब चरने वाले जन्तु कुछ भी खाने से नहीं चूकते। ऐसे में यह रूप परिवर्तन इन्हें खाए जाने से बचाता है। पत्थरों से गज़ब की समानता के चलते इन्हें 'लिविंग स्टोन' यानी 'ज़िन्दा पत्थर' भी कहा जाता है।

कोबरा प्लांट

कुछ पौधों के लिए खतरनाक जन्तुओं-सी भंगिमाओं की नकल कारगर प्रतीत होती है। मसलन, केलिफोर्नियन कोबरा प्लांट दरअसल एक कीटभक्षी पौधा है जो तरह-तरह के छोटे-मोटे कीटों को अपना भोजन बनाता है। लेकिन कहीं खुद किसी का भोजन न बन जाए इसलिए यह अपना फन उठाए कोबरा की तरह खड़ा दिखता है।

ऐरिसेमा

http://botanicallyinclined.files.wordpress.com/2012/05/arisaema-candidissimum-3.jpg?w=477&h=391

ऐसा ही एक और उदाहरण है जो हमारे यहाँ हिमालय में केदारनाथ के आसपास आम तौर पर दिख जाता है – *ऐरिसेमा* अर्थात् स्नेक प्लांट। यह दूर से ऐसा दिखता है कि जैसे कोई नाग अपना फन उठाए चेतावनी की मुद्रा में खड़ा हो। इस पर हूबहू नाग जैसे शल्क और बाहर लटकती जीभ भी होती है। अब भला किसी मवेशी की क्या मजाल जो इसके पास भी फटकने की हिम्मत करे।

दिखावटी बिच्छू

अब ऐसे पौधे की बात करते हैं जो अपने ही रिश्तेदारों की मिमिक्री करते दिखते हैं। डेड नेटल और घण्टी पुष्प नेटल असली डंक मारने वाले *नेटल अर्टिका* की नकल करते हैं। दरअसल *अर्टिका* एक डंक मारने वाला पौधा है जिसकी पत्तियों और तनों पर दंशरोम लगे होते हैं जो चुभने पर बिच्छू के डंक-सा असर दिखाते हैं। डेड नेटल की पत्तियाँ भी ऐसी ही दिखती हैं परन्तु उस पर उपस्थित रोएँ दंशरोम नहीं होते। डंक मारने वाले पौधे, *अर्टिका* और *लेपोर्टिया*, पचमढ़ी में तो मिलते ही हैं, साथ ही मेरे कॉलेज (होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर) में भी बरसात के दिनों में ये अक्सर दिखाई दे जाते हैं। डंक मारने वाले ये पौधे चरने वाले जीवों से बच जाते हैं।

छुई-मुई

http://farm6.staticflickr.com/5316/5856684305_3ce323c2ce_z.jpg

छुई-मुई का स्वांग

चरने-कुतरने वाले जन्तुओं को चौंकाकर अपनी रक्षा करने का एक बढ़िया उदाहरण है छुई-मुई का पौधा अर्थात् *मायमोसा प्यूडिका*। हल्का-सा स्पर्श होने पर तुरन्त पत्तियाँ बन्द होने लगेंगी। इस अचानक होने वाली घटना की वजह से कीट या जीव चौंककर उससे दूरी बना लेते हैं। देखा यह गया है कि छुई-मुई के आसपास उगने वाले अन्य पौधे जिनकी पत्तियाँ छुई-मुई से मेल खाती हैं, खाए जाने से बच जाते हैं। सम्भवतः *मायमोसा* की पत्तियों से समानता का उन्हें लाभ मिलता है।

नकली अण्डे

दक्षिण और मध्य अमेरिका के वर्षा वनों में पाई जाने वाली गेली कलर्ड हेलिकोनिया तितलियाँ अपने अण्डे पैशन-फ्लावर के पत्तों पर देती हैं (जो उसके लार्वा का खास भोजन है)। इस तरह उनसे निकलने वाले लार्वा को तुरन्त उनका मनपसन्द खाना यानी इसकी पत्तियाँ मिल जाती हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि उसके लार्वा को पर्याप्त खाना मिलता रहे, मादा तितली ऐसी पत्तियों पर अण्डे नहीं देती जहाँ पूर्व में किसी अन्य तितली ने अण्डे दिए हों।

तितली के इसी व्यवहार का फायदा उठाते हुए पैशन-फ्लावर की पत्तियों पर नकली अण्डे यानी तितली के अण्डे जैसी रचनाएँ निर्मित होने का सिलसिला विकसित हुआ है। पत्तियों पर पहले से किसी और तितली ने अण्डे दिए हैं यह मानते हुए तितलियाँ ऐसी पत्तियों पर अपने अण्डे नहीं देतीं। और इस तरह पत्तियाँ अण्डों की नकल करके लार्वा द्वारा कुतरे जाने से बच जाती हैं।

परागण के लिए मिमिक्री
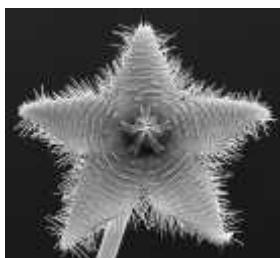
स्टेपेलिया के पौधे मांसल होते हैं और फूल बड़े-बड़े सितारे के आकार के होते हैं। इसके फूलों की पंखुड़ियों में सड़ते हुए मांस से साम्य के लिए वह सब कुछ हुआ है जो जैव विकास के दौरान सम्भव था। मसलन, इसका रंग-रूप, गन्ध और इसकी पंखुड़ियों की सतह की बारीकियाँ तक सड़ते हुए मांस की तरह बन पड़ी हैं। इसके रूप-रंग पर मोहित हो मांस-प्रिय मक्खियाँ इस पर मँडराती रहती हैं। यहाँ तक कि इसकी पंखुड़ियों को सड़ता हुआ मांस समझकर वे अपने अण्डे तक इस पर दे डालती हैं। अण्डे देने की इस प्रक्रिया में इनके पैरों पर फूलों के पोलेनिया (पराग कणों के झुण्ड) चिपक जाते हैं और जब ये मक्खियाँ स्टेपेलिया के दूसरे फूल पर अपने अण्डे देने जाती हैं तो पैरों पर चिपके पोलिनिया वहाँ छूट

स्टार फ्लावर (स्टेपेलिया)

जाते हैं और उस फूल का परागण हो जाता है। मैंने स्वयं अपने घर पर लगे स्टेपेलिया के फूलों पर इन मक्खियों को अण्डे देते और उनसे लार्वा निकलते देखे हैं।

रैफ्लेसिया का फूल लगभग एक मीटर व्यास एवं 15 किलो वज़न का होता है और इसकी पंखुड़ियों की मोटाई लगभग एक सेंटीमीटर होती है। इसकी पंखुड़ियों का रूप-रंग और गन्ध सड़ते हुए मांस की तरह होते हैं। इनके चक्कर में पड़कर मुर्दाखोर मक्खियाँ इस पर मँडराती हैं और इस दौरान रैफ्लेसिया के फूल का परागण हो जाता है।

ऑर्किड की मिमिक्री

पौधों द्वारा जन्तुओं की हूबहू नकल करने का श्रेष्ठ उदाहरण है ऑर्किड के फूल। जैसे बी-ऑर्किड - *ऑफरिस*। इसका परागण एक मधुमक्खी करती है। इसके फूलों का आकार, रंग-रूप और गन्ध इस मधुमक्खी की मादा की तरह होती है। छलावे की हद तो यह है कि फूलों पर दो ऐसे चमकदार धब्बे भी होते हैं जो मादा मधुमक्खी पर पाए जाते हैं। आसपास की पंखुड़ियाँ इतनी सिकुड़ी होती हैं कि वे मादा मक्खी के ऐंटीना जैसी ही दिखती हैं। इतनी गज़ब की समानता के चलते नर मधुमक्खी इसके फूलों से सम्भोग की कोशिश करता है और इसी कोशिश में फूल पर लगे पोलिनिया (पराग कणों का समूह) इसके सिर पर चिपक जाते हैं। धोखे का शिकार नर मक्खी फिर किसी मादा मक्खी की तलाश में भटकता-भटकता गन्ध से आकर्षित हो पुनः किसी ऑर्किड फूल को मादा समझ उससे सम्भोग की कोशिश करता है तो उसके सिर पर चिपके पोलिनिया दूसरे ऑर्किड फूल पर चिपक जाते हैं। फूल का तो परागण हो गया परन्तु नर मक्खी को क्या मिला? न पराग, न मकरन्द। कोई पौधा बिना कुछ दिए अपना काम निकलवा ले, है ना गज़ब की बात।

बी-ऑर्किड

जीव शास्त्रियों का कहना है कि जीवजगत् में इस तरह की मिमिक्री लाखों सालों के परस्पर अनुकूलन का नतीजा है। पौधे और जन्तु, दोनों में साथ-साथ रहते-रहते जो छोटे-छोटे फायदेमन्द परिवर्तन हुए वे धीरे-धीरे इतने ज़्यादा समान हो गए कि आज उन्हें देख उनकी इस नकलपट्टी पर आश्चर्य होता है, कि कैसे एक पौधा हूबहू एक मादा मक्खी जैसा या कैसे एक पौधे का पुष्पक्रम कोबरा के फन के समान दिख सकता है? ऐसे सभी उदाहरण पौधे और जन्तुओं में हुए सहविकास (parallel co-evolution) के उदाहरण हैं।

✦✦

पेड़ों पर पक्षियों की दावत के दिन

मार्च-अप्रैल में जिन पेड़ों पर फूलों की बहार छाती है उनमें पलाश, सेमल, गधापलाश एवं गुलमोहर प्रमुख हैं। कुछ दिनों बाद अमलतास और नीली गुलमोहर पर भी ऐसी ही बहार छा जाती है। चटख लाल, पीले और नीले फूलों से लदे ये पेड़ प्रकृति की सुन्दरता के बहुमूल्य रत्न हैं। इन पेड़ों पर फूलों की बहार के साथ एक और बहार आती है, जिस पर हम लोगों का ध्यान कम ही जाता है – सुन्दर रंग-बिरंगे, चहचहाते, एक डाल से दूसरी डाल पर फुदकते तरह-तरह के पक्षियों की बहार।

सेमल
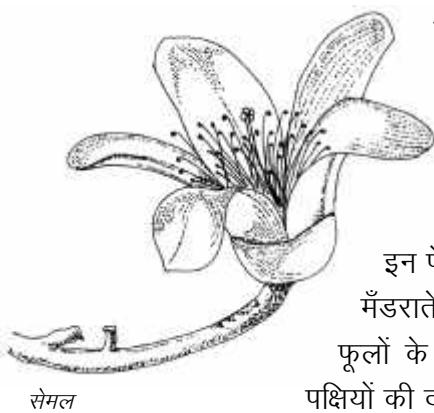
इन पेड़ों पर मैना, बुलबुल, फुलचूकी, व शकरखोरा (सनबर्ड) को मँडराते देखा जा सकता है। काला कौआ भी सेमल और पलाश के फूलों के चक्कर लगाता रहता है। सही मायने में यह मौसम इन पक्षियों की दावत का है। ये सभी मधुपान के लिए इन फूलों के पास जाते हैं जो इनके भोजन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। फूलों के मकरन्द में काफी मात्रा में शर्करा पाई जाती है। इसमें ग्लूकोज़, फ्रक्टोज़, सूक्रोज़ के अलावा डेक्सट्रिन, कुछ एन्ज़ाइम, वाष्पशील तेल व खनिज लवण भी मिलते हैं। इसलिए यह काफी पौष्टिक होता है।

जिन फूलों पर ये पक्षी मँडराते हैं उनमें कुछ विशेषताएँ होती हैं। मसलन बड़ा आकार, मुख्यतः लाल-पीला रंग, गुच्छों में पाया जाना और सुगन्ध का अभाव। पक्षियों की सूँघने की क्षमता बहुत ही क्षीण होती है। परन्तु नज़र बहुत पैनी, जिसके चलते दूर से ही ये फूल इन्हें नज़र आ जाते हैं।

पक्षी जिस मकरन्द की तलाश में इन फूलों के पास जाते हैं वह विशेष ग्रन्थियों में बनता है जो फूलों के पिछले भाग में स्थित होती हैं। यहाँ से मकरन्द प्राप्त करना आसान नहीं होता। परन्तु इन ग्रन्थियों की ऊपरी सतह छिद्रमय होती है जिससे मधु निकलता रहता है। इस कारण इनकी सतह चमकीली व चिपचिपी दिखाई देती है। मकरन्द का रंग हल्का पीला होता है।

इनमें से कुछ फूल लम्बे नलिकाकार होते हैं, जैसे पलाश और बिगनोनिया।

बिगनोनिया के फूल गहरे पीले या सिन्दूरी रंग के होते हैं। यह दरअसल एक बेल है जिसके फूल की पंखुड़ियाँ मिलकर एक नलीनुमा रचना बनाती हैं। इसके पिछले भाग में मकरन्द भरा रहता है। यह नलिका इतनी लम्बी होती है कि लम्बी-पतली चोंच वाले पक्षी ही वहाँ से मकरन्द प्राप्त कर सकते हैं। जब यह पक्षी अपनी लम्बी चोंच फूल के अन्दर डालता है तो बाहर की ओर निकले पराग कोशों से पराग कण इसके सिर पर चिपक जाते हैं। यहाँ से जब यह पक्षी मकरन्द की तलाश में दूसरे बिगनोनिया फूलों पर जाता है, तो ये पराग कण उस फूल के मादा भाग पर चिपक जाते हैं और अनजाने में ही परागण क्रिया हो जाती है।

जिस तरह पक्षियों द्वारा परागित फूलों में कुछ विशेषताएँ होती हैं, ठीक उसी तरह इन पक्षियों में भी कुछ विशेषताएँ होती हैं। जैसे इनका छोटा आकार, लम्बी पतली चोंच और इंजेक्शन की सूई जैसी खोखली जीभ। कटिबन्धीय क्षेत्रों के फूलों की नली की लम्बाई और उनका रस चूसने वाली चिड़ियाओं की चोंच की लम्बाई में बहुत तालमेल देखा गया है। यह बात हमिंगबर्ड में विशेष रूप से देखने में आती है। यह एक प्रमुख परागणकर्त्ता है। इसकी लगभग 300 प्रजातियाँ हैं। ये सब उड़ते-उड़ते ही मधुपान करते हैं। ये अपनी लम्बी चोंच और नली जैसी जीभ से फूल में से काफी गहराई से इंजेक्शन की तरह रस चूस लेते हैं।

शकरखोरा

फूल की नली एवं चोंच की लम्बाई में सम्बन्ध होने से लम्बी चोंच वाले पक्षी लम्बी नली वाले फूलों से व छोटी चोंच वाले पक्षी छोटे फूलों से रसपान करते हैं। इस तरह एक प्रजाति के हमिंगबर्ड हमेशा किसी एक निश्चित प्रजाति के फूलों के पास ही जाते हैं। विकास के दौरान फूलों में ऐसे कई परिवर्तन हुए हैं जो पक्षियों द्वारा परागण को बढ़ावा देते हैं। इनमें से कुछ अनुकूलन ऐसे हैं जो इच्छित परागणकर्त्ता को ही अपनी ओर आकर्षित करते हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि इसी तरह पक्षियों में भी फूलों के अनुसार परिवर्तन हुए हैं। यानी विकास के दौर में दोनों ने एक-दूसरे के प्राकृतिक चयन पर प्रभाव डाला है। तभी तो फूल की

नली की लम्बाई और उस पर आने वाली चिड़िया की चोंच की लम्बाई में समानता पाई जाती है।

पक्षी परागित पौधों के लिए यह ज़रूरी है कि उनके परागणकर्त्ता उनके प्रति समर्पित रहें। इन्हीं फूलों पर मँडराते रहें। इस हेतु इनमें रोज़ थोड़ा-थोड़ा मधु स्रावित होता है ताकि पक्षी बार-बार उनके पास आएँ। दूसरी ओर उनका रंग एवं आकार भी विशिष्ट होना चाहिए ताकि फूलों की भीड़ में उन्हें आसानी से पहचाना जा सके। इस तरह से पक्षियों को अपने पसन्दीदा फूलों को ढूँढने में ऊर्जा व समय बरबाद नहीं करना पड़ता। पक्षी-परागित फूलों में नेक्टर गाइड* नहीं होते। ऐसा माना जाता है कि पक्षी स्वयं इतने समझदार होते हैं कि वे यह पता लगा लेते हैं कि मधु कहाँ जमा है। इस काम में उनकी लम्बी, पतली और कभी-कभी मुड़ी हुई चोंच बहुत सहायक होती है।

कारण जो भी रहा हो मगर यह रिश्ता इन वनस्पतियों की वंशवृद्धि के लिए आज भी बहुत महत्वपूर्ण है। इन पक्षियों की मदद के बिना सेमल, पलाश, गुलमोहर, बिगनोनिया एवं अन्य ऐसे कई पेड़-पौधों का जीवन-चक्र पूरा नहीं हो सकता। सहविकास (co-evolution) के ऐसे और भी कई उदाहरण प्रकृति में बिखरे पड़े हैं।

---

* मधुदर्शक या हनी/नेक्टर गाइड कुछ फूलों में पाए जाते हैं जो कीटों को मकरन्द ग्रन्थियों तक पहुँचने में मददगार होते हैं। विस्तृत जानकारी के लिए देखें: *फूल से बीज तक*, किशोर पँवार, एकलव्य, 2011.

✦✦

तितली रानी दूर ना जाना

प्रकृति में तितलियों और फूलों का रिश्ता बना हुआ है। दोनों एक-दूसरे का खयाल रखते हैं। तितलियाँ फूलों के कानों में प्यार भरा गीत गुनगुनाती हैं। अपनी सूँडी से उन्हें सहलाती हैं और बतौर मेहनताना उन्हें मीठा मकरन्द मिलता रहता है।

पैपीलियो

क्या आपने कभी गौर किया है कि वसन्त के आसपास तितलियों का दिखलाई पड़ना कम हो जाता है? बारिश के बाद भी तितलियाँ कम ही नज़र आती हैं। आखिर ऐसा क्या होता है इन मौसमों में जिससे आसपास उड़ने-मँडराने वाली तितलियाँ गायब होने लगती हैं? हमारे देश से दूर ब्रिटेन में इस बात पर पर्यावरण के प्रति प्रेम रखने वालों ने गौर किया और पाया कि उनके देश में तितलियाँ सचमुच गायब हो रही हैं। इसके कारण ढूँढे गए और मिले भी। कारण वही थे कि मनुष्य ने अपने आसपास की झाड़ियों, बागड़ और फूलों के पौधों की जगह पर खेती करना शुरू कर दिया है या मकान बनाकर रहने लगे हैं और तितलियों के रहने के लिए जगह ही नहीं बची है। घास के मैदान, जंगल, बागड़ या फूलों की क्यारियाँ तितलियों, भौंरों और कुछ कीटों के लिए रहने और जीने की जगह होती हैं। जैसे-जैसे ऐसी जगहें खत्म होती गईं, तितलियाँ और दूसरे जीवों का जीवन संकट में पड़ता गया। यूरोप में जो अध्ययन हुआ उसमें यह बात सामने आई है कि लगभग 10 प्रतिशत तितलियाँ संकट में हैं और उन्हें बचाया नहीं गया तो ये आने वाले समय में दिखाई नहीं देंगी।

ग्रे पैंज़ी

ग्रेट एग फ्लाई

हमारे देश की बात करें तो एक अनुमान के मुताबिक कश्मीर से कन्याकुमारी तक तितलियों की लगभग 1500 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। तितली सिर्फ एक सुन्दर जीव ही नहीं है, बल्कि हमारे पर्यावरण का महत्वपूर्ण भाग है। वह एक फूल के पराग को दूसरे फूल तक पहुँचाती है और परागण क्रिया में सहायता करती है। इससे फूल बनते हैं और फूलों से ही फल और बीज। सोचो, अगर यह खूबसूरत नन्हा जीव नहीं

प्लेन टाइगर

कॉमन गुल

रहे तो फल कहाँ से आएँगे और नए पौधे कैसे बनेंगे। प्रकृति में तितलियों और फूलों का रिश्ता बना हुआ है। दोनों एक-दूसरे का खयाल रखते हैं। परन्तु अफसोस इस बात का है कि सदियों से चला आ रहा लेन-देन का यह रिश्ता अब संकट में है। खत्म होता प्राकृतिक आवास और बदलता पर्यावरण इसके खास कारण हैं।

लेमन पैंज़ी

सिर्फ तितलियाँ ही नहीं बल्कि बहुत से जीव-जन्तुओं का जीवन धीरे-धीरे मनुष्य की गतिविधियों के कारण खतरे में है। इसके मद्देनज़र ही वर्ष 2010 अन्तर्राष्ट्रीय जैव-विविधता वर्ष के रूप में मनाया गया।

तितलियाँ बची रहें। ऐसे ही हमारे परिवेश को रंगीन एवं खुशनुमा बनाती रहें, इसके लिए यह बहुत ज़रूरी है कि हम अपने आसपास ज़्यादा बाग-बगीचे लगाएँ। जंगल रहने दें। घास के मैदान बचाएँ। आँगन में रंग-बिरंगे फूलों की क्यारी सजाएँ, क्योंकि तितलियाँ हैं तो फूल हैं और फूल हैं तो फल। तितलियों को अपना दोस्त बनाने के लिए गेंदा, तरह-तरह के एस्टर, लैंटाना, कनेर, लाल पत्ता, हल्दी-कुंकू, सदाबहार, चाँदनी जैसे पौधे ज़्यादा से ज़्यादा लगाएँ। इन पर मँडराने वाली कुछ खास तितलियाँ हैं — ब्राउन पैंज़ी, प्लेन टाइगर, पैपीलियो, कॉमन जैज़बेल, लेमन पैंज़ी, मोनार्क, स्ट्राइप्ड टाइगर, कॉमन येलो और ब्लूज़। आम मान्यता है कि तितलियों का जीवनकाल बहुत छोटा होता है, पर ऐसा नहीं है। तितलियाँ कुछ सप्ताह से लेकर लगभग वर्ष भर तक तक ज़िन्दा रहती हैं, यदि शिकार से बची रहें तो। याद रहे तितलियों को देखने का मज़ा उन्हें एक फूल से दूसरे फूल तक मँडराते हुए देखने में ही है, उन्हें पकड़ने में नहीं।

चाँदनी

तितलियों का फूलों से रिश्ता

अफीम

http://1.bp.blogspot.com/-eHuSlr2HNpA/TY8syOhfnzI/AAAAAAAAABw/3Zc1993cvzc/s1600/afeem1.jpg

फूलों पर तितलियों, भौरों व अन्य कीट-पतंगों के झुण्ड के झुण्ड मँडराते तो सभी ने देखे होंगे। क्या आपने कभी विचार किया है कि आखिर ये कीट-पतंगे फूलों के चक्कर क्यों लगाते रहते हैं? उन पर बैठकर क्या करते हैं? क्या रिश्ता है फूलों का इनसे?

भोजन की तलाश ही इन कीट-पतंगों को फूलों के चक्कर लगाने के लिए मजबूर करती है। पराग कण और मधु (नेक्टर) ही इनका भोजन है। गुलाब, अफीम व सूरजमुखी जैसे फूलों से इनको ढेर सारे पराग कण मिलते हैं। ये शर्करा, खनिज लवण व प्रोटीन के अच्छे स्रोत हैं। पराग कोश के फटने से पराग कण बाहर निकलते हैं। फूलों को पराग कोश के फटने के समय के अनुसार जल्दी सुबह, सुबह और दोपहर में पराग बिखेरने वालों में बाँटा जाता है। पराग कोश के फटने व कीटों के निकलने में भी एक सम्बन्ध देखा गया है।

पराग के अलावा मधु भी कीटों का पसन्दीदा भोज्य पदार्थ है। इसमें ग्लूकोज़, फ्रक्टोज़ व शक्कर के अलावा डेक्सट्रिन, कुछ एन्ज़ाइम, वाष्पशील तेल व खनिज लवण भी पाए जाते हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण मधु को एक उत्तम पौष्टिक आहार भी माना गया है। मधु विशेष प्रकार की ग्रन्थियों में बनता है। इन्हें मकरन्द ग्रन्थि कहते हैं। *एबुटीलोन* में ये अंखुड़ी के नीचे स्थित होती हैं। *रेननकुलस* में पंखुड़ी के पास। वहीं वायोला (बनफ्शा) में पराग कोश के नीचे होती हैं। कभी-कभी ये अण्डाशय के नीचे भी पाई जाती हैं।

कुछ फूलों में तो मकरन्द बहुत ही अधिक मात्रा में रहता है। केले के नर फूल में 150 ग्राम और भाला लिली के एक फूल से एक छोटा गिलास भर मकरन्द प्राप्त किया जा सकता है। *बेकासिया* के फूलों में तो इतना मधु होता है कि ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासी इसे भोजन के रूप में इस्तेमाल करते हैं। मकरन्द में शक्कर का प्रतिशत फूलों की प्रजाति पर निर्भर होता है। सामान्यतया यह 70 से 80 प्रतिशत तक होता है।

केले का पौधा
और उसका पुष्पक्रम

मधुमक्खियाँ किस फूल पर जाएँगी यह उनमें पाई जाने वाली शक्कर की मात्रा पर भी निर्भर करता है। दस प्रतिशत से कम शक्कर वाले फूलों पर मधुमक्खियाँ जाना ही छोड़ देती हैं। फूलों का रस चूसने के लिए मधुमक्खियों के पास एक विशेष सूँडनुमा रचना होती है। जब वे सूँड को मधु चूसने के लिए मधुग्रन्थि तक ले जाती हैं तो उस फूल के पराग कण उनके शरीर के विभिन्न अंगों पर चिपक जाते हैं।

ऐसा नहीं है कि कीट-पतंगे सिर्फ भोजन की तलाश में ही फूलों पर मँडराते हैं। कुछ तो अपने अण्डों को सुरक्षित रूप से रखने के लिए भी फूलों की मदद लेते हैं। जैसे आम, यूक्का व अंजीर में कीट अपने अण्डे फूलों के अण्डाशय में जमा करते हैं। कलमी आम में अधिकतर जो कीड़ा निकलता है, उसका भी यही कारण है। आम पर जब फूल आते हैं तभी ये कीट आम के फूल के अण्डाशय में अण्डे देते हैं। ये धीरे-धीरे फल के साथ बढ़ते हैं और लार्वा बन जाते हैं। यही लार्वा हमें पका आम काटने पर दिखाई देता है।

डक फ्लावर

http://www.tradewindsfruit.com/
dutchmans_pipe.jpg

कुछ कीट फूलों की चमक-दमक व दुर्गन्ध के कारण भी उनके पास जाते हैं। जिमीकन्द और *ऐरिस्टोलोकिया* (डक फ्लावर) के फूलों से निकलने वाली सड़े मांस की गन्ध के कारण ये उनके जाल में फँस जाते हैं। फूल से जब वे बाहर निकलते हैं तो उन पर पराग कण चिपक चुके होते हैं। ये कीट-पतंगे जब एक फूल से दूसरे फूल पर आते-जाते हैं, तो उन पर लगे पराग कण दूसरे फूल के मादा भाग पर अनायास ही चिपक जाते हैं। इस तरह उस फूल की परागण की क्रिया हो जाती है। परागण के बाद फूलों से फल व बीजों का निर्माण होता है। इस प्रकार कीट-पतंगों की सहायता से पौधों का जीवन चक्र चलता रहता है। परन्तु कीटनाशी पदार्थों के बढ़ते प्रयोग ने इस पर भी अपना दुष्प्रभाव डालना शुरू कर दिया है क्योंकि कीटनाशी मित्र व शत्रु कीट में फर्क नहीं करता।

✦✦

किस्सा बटेर और फलीदार पौधों का

घोड़ा घास से यारी करेगा तो खाएगा क्या? पर क्या घास यूँ ही चरी जाती रहेगी? कई पौधों में चराई की प्रतिक्रियास्वरूप ऐसे रसायन बनते हैं जो परोक्ष रूप से चरने वालों की जनसंख्या पर नियंत्रण रखते हैं ताकि अत्यधिक चराई के खतरों से बचा जा सके। ऐसा विशेषकर सूखे के दौरान होता है।

किस्सा बटेर और फलीदार पौधों का है। जब अच्छी बारिश होती है तब चरागाह में घास-फूस की खूब वृद्धि होती है। उल्लेखनीय है कि चरागाहों में तरह-तरह की घास के साथ कुछ अन्य पौधे भी उगते हैं जिनमें फलीदार पौधे (लेग्यूम) भी होते हैं। इन्हीं से चरने वाले जन्तुओं को प्रोटीन मिलता है। खूब बारिश से फलीदार पौधे अच्छी तरह फलते-फूलते हैं। अतः उनकी पत्तियों में एक रसायन आयसोफ्लेवोन की मात्रा अपेक्षाकृत कम हो जाती है। ये मादा हॉर्मोन के समतुल्य हैं। पत्तियों में कम आयसोफ्लेवोन होने से इसकी पत्तियाँ खाने से बटेर के जनन तंत्र पर ईस्ट्रोजेनिक प्रभाव नहीं पड़ता। इससे बटेर में अण्ड-जनन सामान्य तरीके से होता है और पर्याप्त संख्या में चूज़े बनते हैं। यानी बटेर की संख्या बढ़ती रहती है।

बटेर

परन्तु बारिश की कमी के दिनों में पौधों की वृद्धि घट जाती है। पत्तियाँ कम व छोटी हो जाती हैं। पत्तियों में आयसोफ्लेवोन की मात्रा बढ़ जाती है। ऐसे में मादा बटेर पर ईस्ट्रोजेनिक प्रभाव पड़ता है और अण्ड उत्पादन घट जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि जिन दिनों दाना-पानी कम होता है, पौधों द्वारा पक्षियों की संख्या पर नियंत्रण रखा जाता है। मादा हॉर्मोन की भाँति कार्य करने के अलावा आयसोफ्लेवोन का इकोलॉजीगत महत्व

पौधों में मानव प्रजनन हॉर्मोन

हॉर्मोन का नाम	*स्रोत*
ईस्ट्रोजन	खजूर के बीज और पराग
ईस्ट्रोजन	अनार के बीज
ईस्ट्रिऑल	विलो
ईस्ट्रोन	सेब के बीज
ईस्ट्राडायॉल	फ्रेंचबीन

भी है, इस बात की पुष्टि लियोपोल्ड (Leopold) और साथियों द्वारा बटेर पर किए गए अध्ययन से होती है। इस तरह फीडबैक के ज़रिए प्राकृतिक संख्या का नियंत्रण बटेर के अलावा कई अन्य जन्तु समुदायों में भी देखा गया है।

1930 में ही खजूर के बीज और अनार के दानों में मादा हॉर्मोन होने का पता चल चुका था। अनार के दानों में तो 17 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम ईस्ट्रोजन मिलने की रिपोर्ट है।

पौधों में पाए जाने वाले मादा हॉर्मोन के प्रभावों से महिलाओं एवं गायों में मासिक चक्र में गड़बड़ियाँ इस बात के पुख्ता प्रमाण हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हॉलैंड में भोजन की कमी के चलते महिलाएँ ट्यूलिप के कन्द खाने को मजबूर हुई थीं जिसके कारण कई महिलाओं में अण्डोत्सर्ग का अभाव देखा गया था।

प्रश्न यह है कि क्या पौधों में आयसोफ्लेवोन का बनना और इसकी ईस्ट्रोजनिक क्रिया महज़ संयोग है? या पौधों में ये पदार्थ चौपायों द्वारा चराई की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उनकी संख्या नियंत्रित करने के लिए उत्पन्न हुए हैं? यह भी कम रोचक नहीं है कि फाइटोहॉर्मोन जैसे पदार्थों से ही फलीदार पौधों में रोगों के प्रति प्रतिरोध विकसित होता है। कुछ भी हो, पौधों में विकास के दौरान उत्पन्न ये रसायन उन्हें मुसीबत से ज़रूर बचाते हैं, चाहे वह चराई हो या रोगाणुओं का हमला हो।

बारिश का मौसम यानी तितलियों के दिन

अरण्डी की पत्ती पर कीट

http://i1.treknature.com/photos/4350/plain_tiger_on_cosmos__02.jpg

बारिश होते ही चारों तरफ खूब हरियाली छा जाती है। ये सारा हरापन पेड़-पौधों के दम पर ही तो है। सावन के महीने में तरह-तरह की बारिशी वनस्पतियाँ हर कहीं उग आती हैं। जहाँ-जहाँ ज़मीन, वहाँ-वहाँ पौधे। सड़कों के किनारों, खेतों की मेड़ों, दीवारों, और तो और कवेलू और फूस की बनी छतों पर भी ये हरियालापन तरह-तरह के कीट-पतंगों तथा चरने-कुतरने वाले जीवों के लिए दावत का सबब है। हरी नाजुक, चमकीली पत्तियाँ इन जीवों का भोजन है। इन दिनों पत्तियों को ध्यान से देखेंगे तो पाएँगे कि उनमें कई छेद हैं। कई के किनारे कुतरे हुए और कुछ पौधों की तो केवल टहनियाँ ही शेष बची मिलेंगी। पेड़-पौधों के आसपास तरह-तरह की तितलियाँ और पतंगे अपनी हवाई कलाबाज़ियाँ दिखाते दिख जाएँगे। इन दिनों तितलियों के पंखों में तो जैसे गज़ब की ऊर्जा भर जाती है। यहाँ से वहाँ और वहाँ से न जाने कहाँ उड़ जाती हैं। इन दिनों तीन-चार तरह की तितलियाँ खूब दिखती हैं, एक हल्की हरी-पीली कॉमन इमीग्रेंट, काली-पीली सुन्दर लाल धब्बों वाली लाइम बटरफ्लाई, प्लेन टाइगर, ग्रास येलो और कुछ पैंज़ियाँ।

प्लेन टाइगर

इस मौसम की सबसे खास बात है कि आप तितली के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं को प्रकृति की प्रयोगशाला में देख सकते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि आपके आसपास शिवबूटा अर्थात् बेलपत्र का पौधा या पेड़ है तो आप उसकी पत्तियों पर लाइम बटरफ्लाई के छोटे-बड़े लार्वा, काँटों के बीच छिपा सुरक्षित रेशमी धागों से लटकता शंखनुमा प्यारा-सा प्यूपा, जिसे शंखी कहते हैं, देख सकते हैं। और इसी के आसपास तितली भी दिखेगी। बस आपको यह देखना है कि कहीं कुतरी हुई पत्तियाँ हैं क्या? कुतरी हुई पत्तियाँ इल्लियों के मिलने की गारंटी है।

तितली का जीवन चक्र

तितलियाँ अपने छोटे-छोटे अण्डे पेड़ की पत्तियों पर देती हैं। इन अण्डों से शिशु निकलते हैं जो लार्वा (कैटरपिलर) कहलाते हैं। ये कैटरपिलर उसी पत्ती को खाते हैं जिन पर उनका जन्म होता है। कुछ समय बाद कैटरपिलर टहनी से जुड़कर अपने आसपास एक सुरक्षित आवरण बनाते हैं और यह अवस्था होती है प्यूपा की। इस प्यूपा के भीतर इल्ली सुन्दर तितली में बदल जाती है।

आप ध्यान से पत्तियों को उलटकर देखेंगे तो तितली के अण्डे भी देख पाएँगे। बहुत छोटे-छोटे पीले रंग के अण्डे। लाइम बटरफ्लाई बेलपत्र के अलावा नींबू और संतरे-मौसम्बी के पेड़ों पर भी अपने अण्डे देती हैं। यानी इन पौधों की उपस्थिति लाइम बटरफ्लाई के पाए जाने की सुनिश्चितता है।

लाइम बटरफ्लाई के अलावा बारिश के मौसम में सबसे ज़्यादा दिखाई देती हैं हरी-पीली कॉमन इमीग्रेंट और ग्रास येलो। ये अपने अण्डे केसिया पर देती हैं। केसिया यानी पीली गुलमोहर और पुवाड़। जिन्हें हम घास-फूस और खरपतवार कहते हैं वे तितलियों के घर हैं। जैसे पुआड़िया, गाजरघास और जंगली राजगिरा। इन्हीं पर वे अपने प्यूपा बनाती हैं। यहीं वे अपना जोड़ा बनाती हैं। यहीं शिकारियों से बचने के लिए छिपती भी हैं। अर्थात् हमारे लिए जो झाड़-झंखाड़ हैं, घास-फूस हैं, कचरा है, वही तितलियों का घर है, भोजन है और शरणस्थली भी है। बारिश समाप्त होते ही ये पौधे भी इन तितलियों के साथ अपना जीवन चक्र पूरा कर बीजों के रूप में ज़मीन में सो जाएँगे। अगली बारिश और तितलियों के इन्तज़ार में।
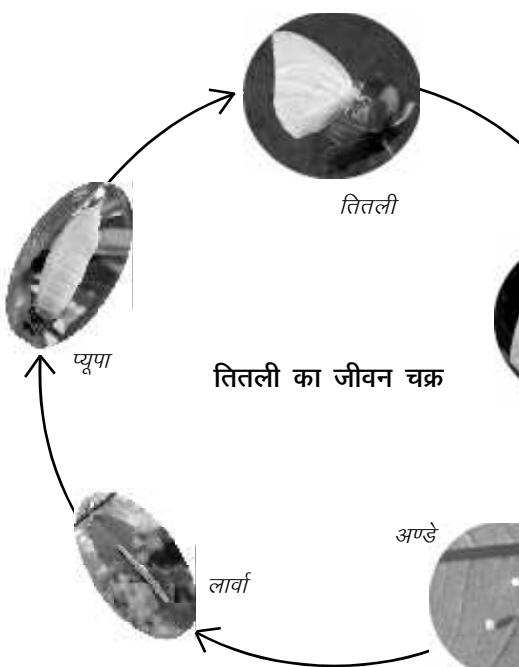
तितली का जीवन चक्र

तितली *प्रजनन* *अण्डे* *लार्वा* *प्यूपा*

✦✦

मिले सुर मेरा तुम्हारा

तितलियों, भँवरों और मधुमक्खियों का रंग-बिरंगे सुन्दर और सुगन्धित फूलों से लेन-देन का रिश्ता है। भोजन लिया जाता है और बदले में एक फूल के पराग कण उसी जाति के दूसरे फूलों पर पहुँचा दिए जाते हैं। यह सम्बन्ध जितना सीधा और सरल दिखता है उतना है नहीं। इसमें कई जटिलताएँ हैं – फूलों की रचना और रंग-रूप में भी और इन कीटों में भी। पर हैं दोनों एक-दूसरे के पूरक। पराग कणों और मकरन्द के इस लेन-देन को पक्का बनाने के जुगाड़ लाखों वर्षों से प्रकृति में चल रहे हैं। इनके चलते यह रिश्ता कुछ जीवों में तो जन्म-जन्म का बन चुका है।

फूलों के पराग कोश जब परिपक्व होकर फटते हैं तो उनमें से निकलने वाले पराग कण उन पर मँडराने वाले कीट-पतंगों के रोएँदार शरीर, विशेषकर टाँगों और सिर पर चिपक जाते हैं। सामान्यतः इसके लिए कीटों को कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं करना पड़ता।

परन्तु चायनीज़ गूज़बेरी का किस्सा कुछ अलग है। यह एक पतझड़ी किस्म की झाड़ी है जो पूर्वी एशिया से लेकर हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों तक में उगती है। न्यूज़ीलैंड में इसे स्वादिष्ट खट्टे-मीठे और सुगन्धित फलों के लिए बड़े पैमाने पर उगाया जाता है। यह फल वहाँ के प्रमुख पक्षी कीवी को खास पसन्द है। अतः इसे बोलचाल में कीवी फल और इसके कुल को कीवी कुल नाम दिया गया है। इस पर सफेद फूल खिलते हैं। इनके पराग कोश लम्बाई में नहीं फटते। होता यह है कि इन पराग कोशों के सिरों पर छिद्र बन जाते हैं जिनसे परिपक्व पराग कण बाहर निकलते हैं। इस विशिष्ट तरीके को छिद्र स्फुटन कहा जाता है।

गुंजन परागण

कीवी फल

http://images.wisegeek.com/whole-and-cut-kiwi-fruit.jpg
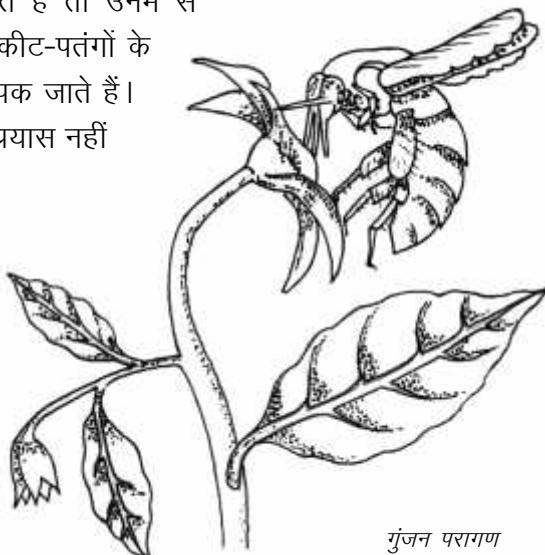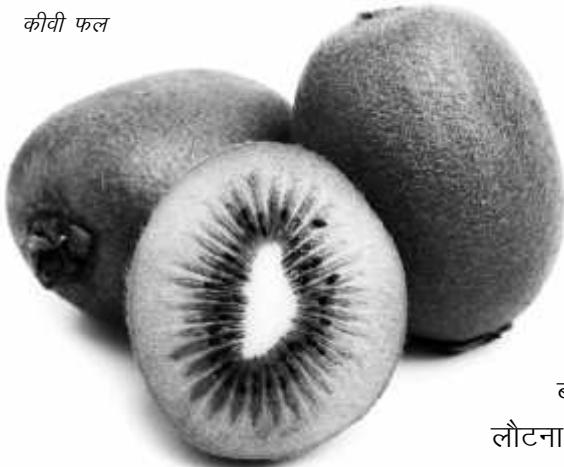
इन छिद्रों से पराग कण आसानी से बाहर नहीं निकलते। अतः इन्हें पाने के लिए विशेष प्रयास करना होता है। सिर्फ इतना पर्याप्त नहीं होता कि परागणकर्त्ता इन फूलों के पास पहुँच जाएँ। उन्हें फूलों पर जाकर एक निश्चित सुर (यानी ध्वनि की किसी निश्चित आवृत्ति) में गुनगुनाना भी पड़ता है। और जब परागणकर्त्ता का सुर पराग कोश के सुर से मिलता है तभी पराग कण बाहर निकलते हैं। अन्यथा इन कीटों को बैरंग लौटना पड़ता है।

एक्टीनीडिया (चायनीज़ गूज़बेरी) के सन्दर्भ में पता चला है कि इसका परागण एक विशेष बम्बल बी *बोम्बस* द्वारा ही होता है। जब यह बम्बल बी इसके फूलों के पास जाकर तेज़ी से गुंजन करती है तो इसके पराग कोश समान आवृत्ति के कारण अनुनाद (रेज़ोनेन्स) करने लगते हैं। नतीजतन छिद्र से पराग कणों का पाउडर बाहर निकलकर इसके शरीर पर चिपक जाता है।

ये पराग कण बम्बल बी पर सवारी करते हुए दूसरे फूलों पर पहुँच जाते हैं और परागण की क्रिया सम्पन्न हो जाती है। परागण की यह युक्ति ‘गुंजन परागण’ कहलाती है। सामान्य मधुमक्खियों के गुनगुनाने की आवृत्ति इसके पराग कोश में कम्पन पैदा करने में असमर्थ होती है। अतः जहाँ भी चायनीज़ गूज़बेरी लगाना हो वहाँ बम्बल बी का आयात भी ज़रूरी होता है। टमाटर में भी गुंजन परागण होता है।

न पौधे न जन्तु हम हैं फफूँद

फफूँद ऐसे जीव हैं जो न तो पेड़-पौधों से मिलते हैं, न जन्तुओं से। एक अलग ही किस्म के जीव हैं ये। इन्हें हम कुकुरमुत्ता, टोड स्टूल और यीस्ट (खमीर) जैसे नामों से जानते हैं। इनकी उत्पत्ति, रचना, व्यवहार एवं प्रजनन के तरीके लम्बे समय तक रहस्य-रोमांच के आवरण में ढँके रहे हैं। कई किंवदन्तियाँ जुड़ी हुई हैं इनकी उत्पत्ति से। जैसे घूरे के ढेर पर कुत्ता पेशाब कर दे तो कुकुरमुत्ते उगते हैं, या जब परियाँ स्वर्ग से उतरकर रात में गोल घेरों में नाचती हैं तो उनके पैरों के निशान के रूप में मशरूम उगते हैं।

कुकुरमुत्ता

इनमें पौधों की तरह न जड़ होती है, न तना, न पत्ती, न फूल। जन्तुओं की तरह इनमें हाथ-पैर-सिर कुछ भी नहीं होता। न ये पौधों की तरह अपना भोजन बनाते हैं, न जन्तुओं की तरह चरते या कुतरते हैं। इसके बावजूद भी ये दूर-दूर तक फैले हुए हैं। कुछ ज़मीन पर उगते हैं तो कुछ पानी में मिलते हैं। कुछ पेड़-पौधों की पत्तियों, तनों, जड़ों और फलों पर उगते हैं, तो कुछ हमारे जैसे जन्तुओं की त्वचा पर। और ज़िद्दी इतने कि एक बार बस जाएँ तो जाने का नाम नहीं लेते। तरह-तरह के फफूँदनाशी, शैम्पू में भरे प्रो-वी, ज़ेड.पी.टी.ओ. तक इनका सफाया नहीं कर पाते। ये हैं कि बालों में डैंड्रफ की तरह पीछा ही नहीं छोड़ते। डैंड्रफ भी तो एक तरह की फफूँद ही है। और खुजली, एक्ज़ीमा, दाद आदि भी दरअसल इसके रिश्तेदार ही हैं।

पफ बॉल

http://www.richard-seaman.com/Fungus/CzechRepublic/CzechPuffballs.jpg

सड़ी-गली लकड़ियों और घूरे पर उगी काली भूरी सफेद छतरियाँ, कार्टून कथाओं के मेंढक के छाते, ज़मीन पर उगे पफ बॉल और अर्थस्टार सब इनके ही विभिन्न रूप हैं।
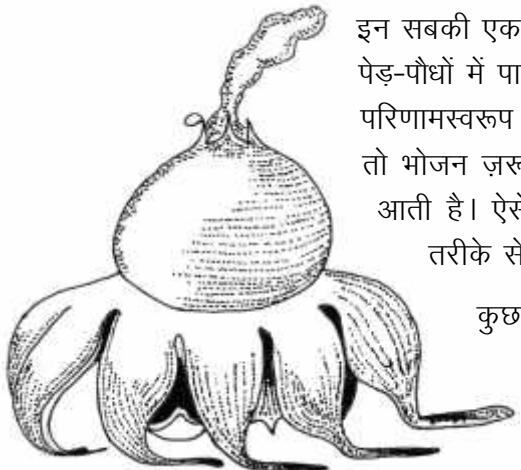
इन सबकी एक ही खासियत है कि ये हरे नहीं होते। यानि इनमें पेड़-पौधों में पाया जाने वाला हरा पदार्थ क्लोरोफिल नहीं होता। परिणामस्वरूप ये अपना भोजन नहीं बना पाते। मगर जीने के लिए तो भोजन ज़रूरी है। फलने-फूलने के लिए ऊर्जा भी भोजन से आती है। ऐसे में एक ही रास्ता बचता है कि किसी न किसी तरीके से भोजन जुटाया जाए।

अर्थस्टार

कुछ फफूँदों ने भोजन चुराने का रास्ता अपनाया है, अमरबेल की तरह। दोनों में एक समानता है। दोनों के पास क्लोरोफिल नहीं है। फफूँदों के पास शुरू से ही नहीं रहा, तो अमरबेल के पास पहले कभी था परन्तु अब नहीं है। अर्थात् दोनों परपोषी हैं, अन्य सजीवों से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। ऐसी फफूँदें अनिवार्य रूप से परजीवी होती हैं, जैसे गेहूँ पर गेरुआ रोग उत्पन्न करने वाला *पक्सीनिया*।

फफूँदों की एक अन्य बिरादरी ने दूसरा रास्ता अपनाया है — जो जीव मर चुके हैं उनके शरीर में जमा भोजन से अपना काम चलाया जाए। ये सड़ी-गली लकड़ियों, सूखी पत्तियों, फूल व फलों से रस के रूप में भोजन लेती हैं।

कुछ फफूँदें ऐसी भी हैं जो ऐसा भेदभाव नहीं पालतीं। पहले ज़िन्दा जीव से परजीवी की तरह, और जीव के मर जाने के बाद मृतजीवी की तरह उससे भोजन ले लेती हैं। ऐसी फफूँदें विकल्पी मृतोपजीवी कहलाती हैं। ये उन दार्शनिकों की तरह हैं जो ये मानते हैं कि ये मस्जिद है वो बुतखाना, मतलब तो है दिल को समझाना, चाहे ये मानो चाहे वो मानो। इन्हें तो मतलब भोजन से है। ज़िन्दा से मिले या मरे से। लगता है इन्होंने इन जीवों के साथ जीने की कसम खा रखी है - जीवन के साथ भी, जीवन के बाद भी।

✦✦

गोबर और फफूँद की प्रेम कहानी

क्या आपने कभी विचार किया है कि गाय-भैंस के गोबर और हाथी-घोड़े द्वारा लीद किए जाने के बाद उसका क्या होता है? गर्मियों में तो जंगलों में गोबर सूखकर कण्डे में बदल जाता है और जलाने में काम आता है। परन्तु बरसात और ठण्ड में उसका क्या होता है? गाँवों में तो गाय का गोबर लीपने-छापने के काम आज भी आता है।

खैर इस लीपने-छापने के फेर से निकलें और असली मुद्दे पर आएँ कि प्राकृतिक अवस्था में जंगलों और चरागाहों में बारिश और ठण्ड के दिनों में गोबर का क्या होता है। दो टूक शब्दों में गोबर घास-फूस खाने वाले जन्तुओं की विष्ठा है। जिस गोबर का नाम सुनते ही शहरी लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, प्रकृति में उसका बड़ा महत्व है। यह गोबर या लीद तरह-तरह के जीव जन्तुओं की आवास स्थली है। कई तरह की मक्खियाँ अपने अण्डे ताज़े गोबर पर ही देती हैं। गोबर और गुबरैलों के बारे में भी आप जानते ही होंगे। परन्तु फिलहाल हम गुबरैलों की बात नहीं करेंगे। अन्यथा सब गुड़-गोबर हो जाएगा!

सृजन और विनाश का जो अन्तहीन सिलसिला प्रकृति में चलता रहता है, उसका एक छोटा-सा हिस्सा है गोबर। इस गोबर में समय के साथ कई परिवर्तन आते हैं और तरह-तरह के जीव समुदाय यहाँ पनपते और नष्ट होते रहते हैं। और अन्त में यह गोबर भी उसी मिट्टी में मिल जाता है जिस मिट्टी पर उगी घास से यह बना था।

तरह-तरह के फफूँद

घास यानी हरी वनस्पतियाँ जो सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में हवा-पानी को मिलाकर अपना भोजन बनाती हैं। पेड़-पौधों द्वारा बनाया गया यह भोजन तरह-तरह की पत्तियों, फलों, फूलों, बीजों व जड़-कन्द आदि के रूप में रहता है। इस पर सबकी

नज़र रहती है। खास तौर से चरने वाले जन्तु, हमारे जैसे सर्वभक्षी और सूक्ष्मजीव तो इस पर नज़र गड़ाए रहते हैं।

पेड़-पौधे तरह-तरह से फफूँदों का भोजन बनते हैं। जीवित अवस्था में रोगकारी फफूँदों का तो मरने पर मृतजीवी फफूँदों का। और तो और गोबर के रूप में अधपची वनस्पतियों को भी कुछ फफूँदें अपना भोजन बनाती हैं। ऐसी फफूँदों को गोबर-प्रेमी कहते हैं। उल्लेखनीय है कि लगभग सभी चरने वाले जन्तु हरी पत्तियों और घास को ठीक तरह से पचाने में दक्ष नहीं हैं। अतः ढेर सारा वनस्पति पदार्थ उनकी आँतों से अधपची अवस्था में गोबर के रूप में बाहर निकाल दिया जाता है। गोबर की मात्रा का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि एक गाय अपने शरीर के वज़न का लगभग 10 प्रतिशत गोबर रोज़ उत्पन्न करती है। इतने सारे गोबर को ठिकाने लगाना हँसी खेल नहीं है, खासकर हमारे देश में जहाँ चौपायों की संख्या करोड़ों में है।

जैसा कि ऊपर कहा गया, गोबर मुख्य रूप से अधपचे वनस्पति पदार्थों का मिश्रण होता है। ये पदार्थ सूक्ष्मजीवियों द्वारा विघटन के लिए आदर्श स्थिति में होते हैं। नम और गर्म अवस्था बैक्टीरिया और फफूँद के लिए अनुकूल होती है। गाय-भैंस के गोबर में उपस्थित रोगकारी जीवों के लिहाज़ से यह जितनी जल्दी विघटित हो उतना ही अच्छा है। विघटन की प्रक्रिया में रोगकारी जीवों की मृत्यु सुनिश्चित हो जाती है और अन्य उपयोगी पोषक पदार्थ भी स्वतंत्र हो जाते हैं।

पिन मोल्ड
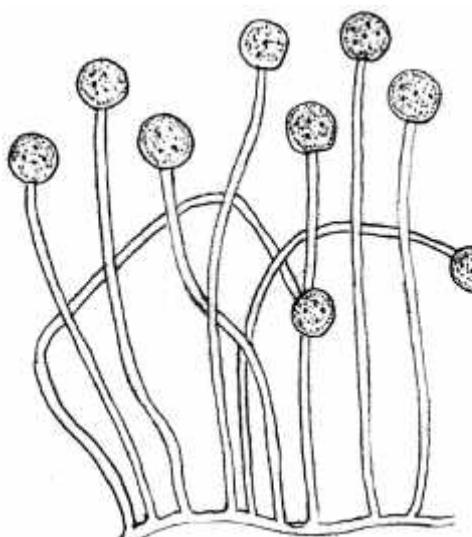
यह लम्बे समय से मालूम है कि गोबर को सड़ाने-गलाने में फफूँदों की भूमिका महत्वपूर्ण है। ताज़े गरमागरम गोबर पर सबसे पहले सूक्ष्म कवक (जैसे पिन मोल्ड) अपना डेरा जमाते हैं। वे वहाँ तेज़ी से बढ़ते हैं और पूरे गोबर को अपने कवक जाल से ढँक लेते हैं। कुछ ही दिनों में इनसे बीजाणु बनते हैं जो इनके प्रजनन में सहायक होते हैं। इनमें से कुछ तो इस तरह से अनुकूलित हैं कि उनके बीजाणु एक खास तरीके से पास की घास पर ही बिखरते हैं और चरने वाले जन्तुओं द्वारा पुनः चरे जाने तक जीवित रहते हैं (जैसे *पायलोबोलस*)। ये बीजाणु शाकाहारियों की आँत में जाकर सक्रिय होते हैं और गोबर के साथ बाहर आते ही इनका अंकुरण शुरू हो जाता है।

इस तरह की फफूँदें शुद्ध रूप से गोबर-प्रेमी होती हैं। ये गोबर पर ही उगना पसन्द करती हैं, जैसे – कप थ्रोअर (*पायलोबोलस*)। यह गाय, घोड़े, भेड़ और खरगोश की विष्ठा पर उगती है।

पायलोबोलस

पिन मोल्ड की आरम्भिक अच्छी वृद्धि के बाद इनकी संख्या तब गोबर पर घटने लगती है जब ये अपने योग्य भोजन गोबर से साफ कर चुके होते हैं। इस अवस्था में कुछ बैक्टीरिया इन फफूँदों के बीजाणु और शरीर का भक्षण करने लगते हैं। इस तरह ये फफूँद नष्ट होने लगते हैं।

इन बदली हुई परिस्थितियों में गोबर पर अब फफूँदों का एक नया समूह अपना डेरा जमाता है। इनकी उपस्थिति प्याले या फ्लास्क जैसी बीजाणु उत्पादक रचनाओं से पता चलती है जिन्हें फफूँद के फलकाय कहते हैं। इनमें से कुछ तो छोटी होती हैं परन्तु कुछ (जैसे *क्रोप्रोबिया, लेजानिया और पेनाइज़ा*) को नग्न आँखों से बड़े आराम से देखा जा सकता है। फफूँदों का यह नया समुदाय गोबर त्याग के एक-दो सप्ताह के बाद दिखता है और कई महीनों तक बना रहता है। समय बीतने के साथ इस समूह के सदस्य भी अपना जीवन चक्र पूर्ण कर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। धीरे-धीरे इनका शरीर भी सड़कर या कीटों का भोजन बनकर वहाँ से अदृश्य हो जाता है। अब यहाँ तरह-तरह के आकर्षक टोड स्टूल (जैसे *स्ट्रोफेरिया, पेनियोलस* और *कोप्रीनस*) गोबर के विघटन की अन्तिम अवस्था में दिखाई देते हैं।

अब तक गोबर के रूप-रंग और अवस्था में बहुत परिवर्तन आ चुका होता है। इसका बहुत सारा पानी उड़ जाता है। यदि परिस्थितियाँ गर्म हों तो यह कड़ा हो जाता है। इसकी शुरुआती अप्रिय गन्ध भी माटी एवं कम्पोस्ट जैसी गन्ध में बदल जाती है। इसकी रासायनिक प्रकृति भी बदल जाती है। घास में मुख्यतः जो सेल्यूलोज़ होता है, वह वैसे तो काफी मात्रा में शाकाहारियों की आँत में पचा लिया जाता है। बचा-खुचा सेल्यूलोज़ पहले-पहल गोबर पर उगने वाली फफूँद के एक-दो समुदाय पचा डालते हैं। परन्तु लिग्निन बाद तक वैसा ही रहता है। इसका पाचन एवं विघटन टोड स्टूल करते हैं।

टोड स्टूल

व्यर्थ से विकास

तरह-तरह की गोबर-प्रेमी फफूँद गोबर में उपस्थित व्यर्थ समझे जाने वाले पोषक पदार्थों का कुछ हिस्सा अपनी वृद्धि, विकास एवं प्रजनन क्रियाओं में खर्च करती हैं। इस तरह गोबर का कुछ भाग इनके शरीर का हिस्सा

सूरज की रोशनी से चलते हैं बीजाणुओं के तीर

पायलोबोलस अपने बीजाणु के बिखराव के तरीके के कारण बहुत प्रसिद्ध है। यह केवल 5-10 मि.मी. ऊँची होती है। इसमें प्रजनन बीजाणुओं द्वारा होता है जो मुग्दर के आकार की बीजाणुधानियों में बनते हैं। इन बीजाणुधानियों में एक लेंस के आकार की रचना होती है जो सूर्य की किरणों को हमेशा इसके केन्द्र में फोकस करती है। इसके निचले हिस्से में पाया जाने वाला एक प्रकाश संवेदी पीला रंजक इसे हमेशा प्रकाश की दिशा में रखने में मदद करता है। सूर्य की किरणों की गर्मी से बीजाणुधानी में उपस्थित रिक्तिका में जल दबाव इतना बढ़ जाता है कि बीजाणु 8 मीटर दूर तक 50 कि.मी. प्रति घण्टा की रफ्तार से गोली की तरह छूटते हैं और आसपास उग रही वनस्पतियों, खासकर घास की पत्तियों पर जाकर चिपक जाते हैं। जब ये पत्तियाँ चौपायों द्वारा चरी जाती हैं तब ये बीजाणु पत्तियों के साथ इनके पेट में चले जाते हैं। वहाँ बीजाणु स्वतंत्र होकर सक्रिय हो जाते हैं। ये गोबर के साथ बाहर आकर अंकुरित होकर अपना कारोबार शुरू कर देते हैं। कितना ज़ोरदार रिश्ता है यह तीन विभिन्न प्रकार के जीवों के बीच। पहला उत्पादक पौधे, दूसरे उपभोक्ता (चरने वाले जन्तु) और तीसरे विघटनकर्ता (फफूँद)। इसी की बदौलत प्रकृति में जीवों और पदार्थों के बीच आदान-प्रदान का चक्र निर्बाध गति से चलता रहता है, निरन्तर, व्यवस्थित और अनुशासित।

बन जाता है। कुछ इन जीवों की श्वसन क्रिया के दौरान कार्बन डाईऑक्साइड व पानी में बदलकर हवा में उड़ा दिया जाता है। इस तरह गोबर से भोज्य पदार्थ धीरे-धीरे खर्च होने लगते हैं और गोबर का ढेर घटने लगता है। इस प्रक्रिया के दौरान निकले खनिज लवण मिट्टी में मिल जाते हैं जो मिट्टी की उर्वरता बढ़ाते हैं।

चौपायों के गोबर का तेज़ी से व सही प्रकार से विघटित होना बहुत ज़रूरी है। इसमें फफूँद महती भूमिका निभाती है। इस तरह हरे पौधों द्वारा मिट्टी से लिए गए पदार्थ फफूँद की मदद से पुनः मिट्टी में मिला दिए जाते हैं। यही पदार्थों का चक्रीकरण है। यदि किसी कारण से ऐसा न हो, तो अच्छे से अच्छे चरागाह बिगड़ जाते हैं और कालान्तर में वहाँ पोषक पदार्थों की कमी हो जाती है। अतः चरागाहों की सेहत के लिए ज़रूरी है कि गोबर और फफूँद की यह प्रेम कहानी चलती रहे।

✦✦

बड़े पौधों का छोटा साथी - मायकोराइज़ा

मानव एक ऐसा सामाजिक प्राणी है जो समाज में रहते हुए भी लड़ता-झगड़ता रहता है। इसके विपरीत चीटियाँ, दीमक व मधुमक्खियाँ ऐसे सामाजिक जीव हैं जिनका आपसी सह-सम्बन्ध तारीफे-काबिल एवं अनुकरणीय है। जन्तुओं की तरह पौधों को भी दूसरे पौधों और जन्तुओं की सहायता की आवश्यकता होती है। हमारे आसपास के हरे पौधे अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। इन पर अन्य सभी प्राणी आश्रित हैं। सतही तौर पर तो यह सही लगता है परन्तु हकीकत में ऐसा नहीं है।

जब हम जीवों के पारस्परिक सम्बन्धों को और बारीकी से देखते हैं तो पाते हैं कि जीवितों में आपस में कई रिश्ते हैं। कहीं एक पौधा दूसरे पौधे पर निर्भर है, तो कहीं एक प्राणी व एक पौधे के बीच ऐसे सम्बन्ध भी हैं कि लगता है जैसे दोनों एक-दूजे के लिए ही बने हैं। एक के अभाव में दूसरे का जीवन सम्भव ही नहीं है। जैसे, *कैलवेरिया मेजर* पेड़ का रिश्ता डोडो पक्षी के साथ था। मॉरीशस में पाए जाने वाले *कैलवेरिया मेजर* के पौधे अब नहीं उगते क्योंकि उनको उगाने वाला पक्षी डोडो लुप्त हो गया है। इसीलिए तो अँग्रेज़ी में कहा जाता है कि "डेड ऐज़ डोडो!" अत्यधिक शिकार के कारण पृथ्वी से डोडो का वंश ही समाप्त हो गया है। प्रकृति में ऐसे उदाहरणों की भरमार है।

डोडो

http://www.davidreilly.com/dodo/images/gallery/DODO1.jpg

आइए एक ऐसे ही अनूठे रिश्ते की बात करें जो ऊँचे-ऊँचे विशालकाय चीड़, ओक, बर्च और पुरानी ब्रेड, अचार व मुरब्बे पर उगने वाली सूक्ष्म फफूँद का है। इन पौधों की जड़ों में अन्य पौधों की तरह मिट्टी से पानी सोखने वाले मूल रोम नहीं होते। ऐसी स्थिति में इन ऊँचे पेड़ों के लिए पानी सोखना एक बड़ी समस्या हो जाती है। इसका समाधान सूक्ष्म फफूँदों की सहायता से होता है।

इन पौधों की जड़ें विशेष प्रकार की फफूँदों से आक्रमित रहती हैं जो जड़ों के चारों ओर बाल की तरह चिपकी रहती हैं। ये फफूँदें पौधों को मिट्टी से पानी व खनिज सोखकर देती हैं। बदले में इन्हें जड़ों से भोजन व रहने के लिए स्थान मिलता है। प्रकृति में सूक्ष्म और विशाल के बीच पाया जाने वाला यह रिश्ता बड़ा ज़ोरदार है। यह बताता है कि बड़ा होने के लिए भी कमज़ोर की मदद लगती है। यह रिश्ता बीज धारण करने वाले 80 प्रतिशत परिवारों में पाया जाता है। प्रायोगिक तथ्य बताते हैं कि पौधों को ये फफूँदें जो पानी व खनिज लवण उपलब्ध कराते हैं, उसकी तुलना में उन्हें लाभ कहीं अधिक होता है। शंकुधारी पेड़ों की अच्छी वृद्धि के लिए उनकी जड़ों का जड़-फफूँद से सम्बन्ध होना आवश्यक है। जिन जड़ों पर यह फफूँद पाई जाती है, वे कम शाखित, बिना मूलटोप व बिना मूल रोम के होती हैं। आधुनिक शोध कार्य से पता चला है कि यह जड़-फफूँद (मायकोराइज़ा) पेड़ों की जड़ों की वृद्धि को भी नियंत्रित करती है। वह जड़ की अम्लीयता और शक्कर की मात्रा को इस तरह बनाए रखती है कि तेज़ी से वृद्धि होती रहे।

बड़े पेड़ व लघु फफूँद का यह रिश्ता दो तरह का होता है। कुछ पेड़ों की जड़ों पर यह एक बाहरी आवरण के रूप में ही रहती है, जैसे चीड़ व ओक में। परन्तु कुछ पेड़ों, जैसे रेड मेपल और ऑर्किड में तो यह फफूँद जड़ों के अन्दर ही पहुँच जाती है।

सुन्दर फूलों के लिए जग प्रसिद्ध ऑर्किड के भ्रूण का विकास तब तक नहीं होता जब तक वह किसी योग्य फफूँद से संक्रमित न हो जाएँ। इसी तरह इनके बीज भी जड़-फफूँद की उपस्थिति में ही उगते हैं। *ब्लैटिल्ला हायसिंथिना* नामक ऑर्किड में बीज तो अंकुरित हो जाता है परन्तु एक-पत्ती अवस्था के बाद फफूँद के संक्रमण के बिना जीवित ही नहीं रह पाता।

बीजों के अंकुरण व फफूँद के प्रकोप के बारे में ऐसा माना गया है कि फफूँद का काम उगते हुए बीजों की जटिल शर्कराओं को सरल शर्करा में बदलना है।

ऑर्किड

वैज्ञानिक जेर्डेमान (J.W. Gerdemann) ने अपने एक अध्ययन में पाया कि यदि मक्का की जड़ों में *एंडोगोन* नामक जड़-फफूँद प्रविष्ट करा दी जाए तो मक्का की वृद्धि
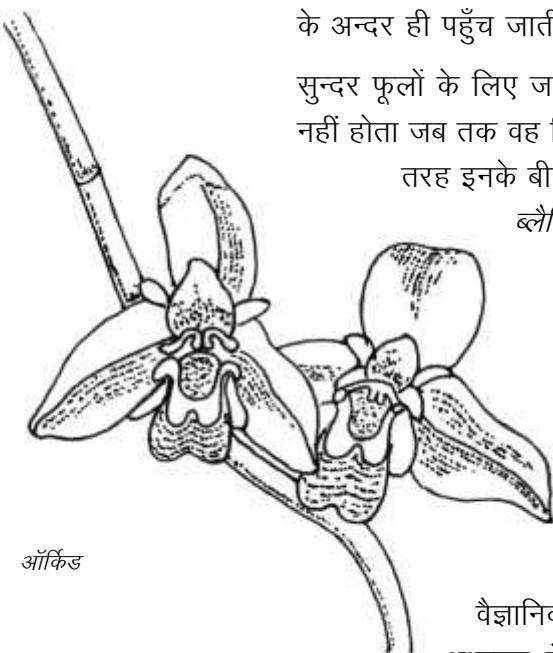
तेज़ी से होती है। एक अन्य वैज्ञानिक जोड़ी डक (J.M. Duck) और निकॉलसन (G.W. Nicholson) का कहना है कि फफूँद मक्का व टमाटर के पौधों में फॉस्फोरस के अवशोषण को बढ़ाती हैं। वैज्ञानिक हैच (A.B. Hatch) का मानना है कि जड़-फफूँद सम्बन्ध का लाभ ऐसी मिट्टी में ज़्यादा मिलता है जिसमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटैशियम कम मात्रा में पाए जाते हों।

जड़ को संक्रमित करने वाली सूक्ष्म फफूँद भी कम समझदार नहीं है। जब तक पर्याप्त मात्रा में जड़ से कार्बोहाइड्रेट मिलने की सम्भावना न हो, यह जड़ से रिश्ता नहीं जोड़ती।

हाल ही में किए जा रहे प्रयोगों से पता चला है कि भारी धातुएँ मिट्टी में उपस्थित सूक्ष्म जीवों को बुरी तरह से प्रभावित करती हैं। ऐसे में बढ़ते हुए वायु व जल प्रदूषण के खतरे अब सिर्फ पौधों के हवाई भाग तक ही सीमित नहीं हैं। मिट्टी में जमी जड़ें भी इनसे प्रभावित हो रही हैं। जड़-फफूँद का यह नाज़ुक रिश्ता अन्य सहजीवी सम्बन्धों की ही तरह ज़हरीले पदार्थों के प्रति बहुत संवेदनशील है। प्रयोगों से पता चला है कि नील हरित बैक्टीरिया जो मिट्टी में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं, कीटनाशी पदार्थों से बुरी तरह से प्रभावित होते हैं। खरपतवारनाशी अट्राज़ीन नील हरित बैक्टीरिया की पैदावार घटा देते हैं। अब तो मिट्टी भी प्रदूषण के खतरों से नहीं बच पा रही है। ऐसे में जड़-फफूँद और पौधों का यह नाज़ुक एवं आवश्यक रिश्ता भी खतरे में है।

पूरा इकोसिस्टम है पत्थरफूल

आगे बढ़ना और मुश्किलों पर विजय पाना अकेले के बस का न हो तो किसी का साथ ढूँढ लेना समझदारी है। जीवों की इस रंग-बिरंगी, रोचक, रोमांचक दुनिया में कई उदाहरण हैं जहाँ एक जीव ने दूसरे से कहा है — साथी हाथ बढ़ाना, एक अकेला थक जाएगा मिलकर बोझ उठाना। इस दुनिया में बड़े-बड़े जीवों ने सूक्ष्मजीवों का दामन थामकर अपनी जीवन नैया पार लगाई है।

कई बैक्टीरिया एवं फफूँदों ने अक्रिय, अनुपलब्ध नाइट्रोजन को नाइट्रेट और नाइट्राइट में बदलकर उपयोगी रूप में परोसा है। पेड़-पौधों एवं इन सूक्ष्मजीवों का यह सम्बन्ध हमें ऊपर से नहीं दिखता। इन पौधों की जड़ों को खोदकर देखने पर पता चलता है कि इनकी जड़ों पर जगह-जगह कुछ विशिष्ट रचनाएँ लगी हैं। यही हैं जड़ ग्रन्थियाँ जिनमें *रायज़ोबियम* नाम के बैक्टीरिया रहते हैं जो पौधों को नाइट्रेट और नाइट्राइट उपलब्ध कराते हैं।

रेगिस्तान की तपती चट्टानों पर, आर्क्टिक क्षेत्र की बर्फ-सी ठण्डी शिलाओं पर, जहाँ मिट्टी का नामो-निशान नहीं है, जहाँ पानी की एक बूँद भी नहीं है, जहाँ जीवन की कल्पना कर पाना ही कठिन लगता है, वहाँ भी एक-दूसरे का साथ लेकर कठिनाई को पार पाने का नाम है 'पत्थरफूल'।

क्रस्टोज़ पत्थरफूल

http://lh3.ggpht.com/-SAUuEJkT4yE/SOkZg8_aqYI/AAAAAAAAHB0/BEXHtHOIvzs/Lichen_squamulose.jpg

पत्थरफूल को वैज्ञानिक भाषा में लायकेन कहते हैं। इन्हें यह नाम वनस्पति शास्त्र के पितामह थियोफ्रॉस्टस (Theophrastus) (371-284 ईसा पूर्व) ने दिया था। पत्थरफूल दरअसल जंगलों एवं रेगिस्तान की नग्न चट्टानों, पुरानी इमारतों के ऐरनों (पत्थर की बड़ी-बड़ी ईंटें) तथा पेड़ों की छालों पर उगी रंग-बिरंगी रचनाएँ हैं। ये दूर से ऐसी दिखती हैं जैसे पत्थर या छाल पर

हरे-पीले, नारंगी, लाल, काले-भूरे फूल चिपका दिए गए हों। यह किराने की दुकानों पर खड़े गरम मसाले (छबीला या छड़ीले) के नाम से बिकता है।

फ्रूटीकोज़ लायकेन

ये बिलकुल अनोखे जीव हैं। अनोखे इसलिए क्योंकि ये कोई एक जीव नहीं हैं बल्कि दो भिन्न प्रकृति के जीवों के मिलने से बनते हैं। इनमें एक है शैवाल अर्थात् काई तथा दूसरा है फफूँद (कवक)। इन्हें वनस्पति शास्त्र में शैवाक भी कहा गया है जो शैवाल और कवक से मिलाकर बना है। पत्थरफूल एक तरह का प्राकृतिक सैंडविच है जिसमें ब्रेड की भूमिका में फफूँद है जिसके बीच में शैवालों का मसाला भरा है। ये शैवाल हरी और नीली दोनों प्रकार की होती हैं।

पूरी दुनिया में पत्थरफूल के लगभग 400 वंश और 15,000 से ज़्यादा प्रजातियाँ मिलती हैं। पत्थरों पर उगने वाले पत्थरफूलों को **सेक्सीकोल** एवं पेड़ों की छालों पर उगने वालों को **कॉर्टीकोल** कहते हैं। लायकेन का रूप एवं प्रकार तय करने में कवक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इसमें 95 प्रतिशत हिस्सा तो कवक होता है, शैवाल तो महज़ 5 प्रतिशत रहती है। वैसे यह 5 प्रतिशत हिस्सा बहुत अहम है। अगर यह न हो तो लायकेन नहीं बन सकते। क्योंकि इस जीव को भोजन उपलब्ध कराने का काम तो शैवाल का ही है।

पत्थरफूल रंग-रूप और आकार की दृष्टि से तीन तरह के होते हैं। तीनों को आप अपने रसोईघर में गरम मसाले के छबीले में देख सकते हैं।

एक तो हरी-भूरी या काली-भूरी फूलों की पंखुड़ियों की तरह होता है। इसे फोलियोज़ यानी पत्तीनुमा नाम दिया गया है। इसी मसाले में कुछ लायकेन लम्बे-भूरे रेशे या पतली-पतली शाखित डोरियों-से दिखते हैं। ये फ्रूटीकोज़ (क्षुपिल) लायकेन हैं। ये अपनी चिपकने वाली रचनाओं से पेड़ की शाखा पर उसकी छाल से चिपके रहते हैं। मसाले में छाल भी देखी जा सकती है।

फोलियोज़

तीसरा सबसे सरल प्रकार है, जो अक्सर चट्टानों पर या पेड़ की छालों पर एक हरी-भूरी परत के रूप में चिपका नज़र आता है। इसको खुरचकर ही निकाला जा सकता है। इसे क्रस्टोज़ कहा जाता है। हिन्दी में इन्हें
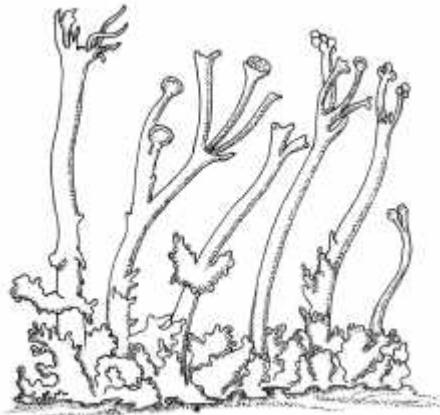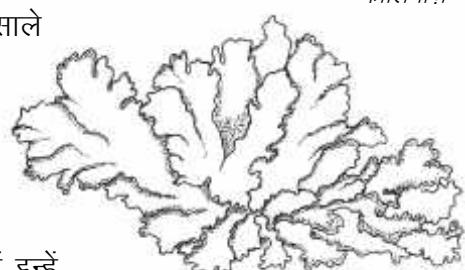
पर्पटी लायकेन नाम दिया गया है। गरम मसाले के रूप में फोलियोज़ और फ्रूटीकोज़ ही काम में लाए जाते हैं। आर्थिक रूप से भी यही उपयोगी हैं। किराने की दुकानों पर बिकने वाला अधिकतर पत्थरफूल केरल, आन्ध्रप्रदेश और असम के जंगलों से आता है।

जैसा कि कहा गया है, ये विचित्र जीव हैं जो दो बिलकुल भिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवों के मेल से बने हैं। फफूँद प्रकाश से दूर रहने वाला एक उपभोक्ता है, अर्थात् उसमें भोजन बनाने की क्षमता नहीं है। यह परपोषी है। दूसरी ओर, शैवाल उत्पादक (स्वपोषी) है। इसके पास भोजन बनाने के लिए ज़रूरी हरा पदार्थ क्लोरोफिल है परन्तु सूर्य की गर्मी और पानी की कमी से निपटने की कोई व्यवस्था नहीं है। कवक के पास क्लोरोफिल तो नहीं है पर गर्मी और सूखे से निपटने की क्षमता है। इन दोनों को मिलाकर एक नया जीव बना है पत्थरफूल, जिसमें दोनों के गुणों का फायदा उठाया गया है। शैवाल की मात्रा कम होने और विषम परिस्थितियों के चलते इनकी वृद्धि अत्यन्त धीमी होती है। आर्क्टिक क्षेत्र में कुछ लायकेन की उम्र 1500 वर्ष तक की आँकी गई है। ये दुनिया के प्राचीनतम जीवों में से हैं।

अब यह देखें कि ये विचित्र जीव वंश वृद्धि कैसे करते हैं, कैसे दूर-दूर तक फैलते हैं। पुराने लायकेन के टूटने-फूटने से नए शरीर बनते हैं। लायकेन सोरेडिया नाम की रचनाओं से भी प्रजनन करते हैं। ये गोल रचनाएँ कुछ शैवाल कोशिकाओं और कवक तन्तुओं का एक समूह होती हैं जो अनुकूल स्थान मिलते ही नया लायकेन बना लेती हैं। ये तो लायकेन के प्रजनन के वे तरीके हैं जिनमें शैवाल और कवक दोनों की भागीदारी होती है परन्तु लैंगिक प्रजनन केवल कवक में ही होता है। इसमें एस्कोस्पोर और बेसिडिया नाम के बीजाणु बनते हैं। ये कवक बीजाणु जब अनुकूल परिस्थितियों में अंकुरित होकर उचित प्रकार के शैवाल के सम्पर्क में आते हैं तो नए पत्थरफूल का निर्माण होता है।

फ्रूटीकोज़

पत्थरफूल का एक महत्व तो हम सभी जानते हैं – खाने को सुगन्धित बनाने के लिए गरम मसाले के रूप में। परन्तु ये पत्थरफूल बहुउपयोगी
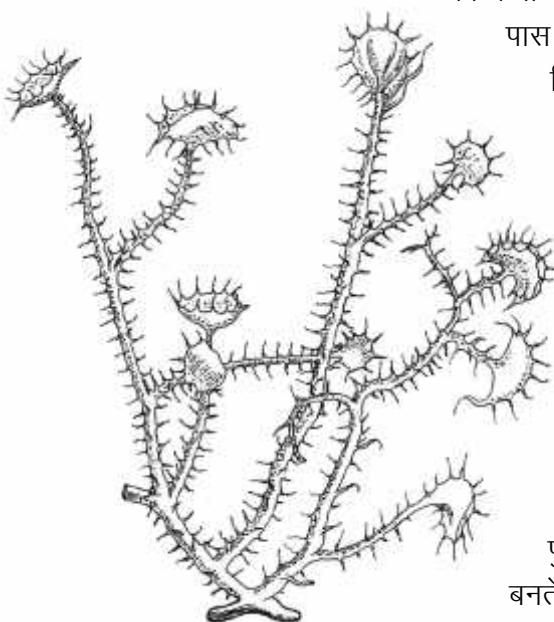
जीव हैं। *लेकैनोरा, एस्पीसीलिया* जैसे पत्थरफूल तितलियों, पतंगों के लार्वा, घोंघों और दीमकों का भोजन हैं। टुंड्रा में बहुतायत से मिलने वाला पत्थरफूल *क्लेडोनिया रेंजीफेरिना* रेंडियर और केरिबू का खास भोजन है। इसे रेंडियर मॉस के नाम से भी जाना जाता है। खरहे तथा खरगोश *एवरनिया प्रुनास्ट्री* लायकेन बड़े चाव से खाते हैं। पत्थरफूल स्कैंडिनेविया, आयरलैंड, इज़राइल, मिस्र और जापान में भी भोजन के लिए उपयोग में लाए जाते हैं।

पत्थरफूल का उपयोग औषधि निर्माण, पूजा सामग्री और शराब बनाने में भी होता है। *रेमेलिना* और *एवरनिया* लायकेन सुगन्धित होते हैं। अतः धूप, हवन सामग्री एवं साबुन को सुगन्धित बनाने में इनका खूब उपयोग किया जाता है। *एवरनिया प्रुनास्ट्री* से तो इत्र भी निकलता है।

लायकेन से विभिन्न प्रकार के रोगों जैसे हायड्रोफोबिया, फेफड़ों के रोग, पीलिया तथा बालों का इलाज होता है। इनके नाम से ही इनके उपयोग का पता चलता है। लगता है कि इनका नामकरण इनसे मिलने वाले लाभों के आधार पर ही किया गया है। *असनिया क्लेडोनिया* से असनिक अम्ल मिलता है जिसमें एंटीबायोटिक गुण है। इससे कटने, जलने और घावों के इलाज के लिए मलहम बनाया जाता है।

सेट्रेरिया आइसलैंडिका और *क्लेडोनिया रेंजीफेरा* में लगभग 66 प्रतिशत शर्कराएँ होती हैं। अतः इनका उपयोग अल्कोहल बनाने में किया जाता है। *रोसेला* और *लेकैनोरा* से ऑरचिल निकलता है, जो ऊन और रेशम को रँगने के काम आता है। प्रयोगशालाओं में ऊतकों को स्पष्ट रूप से देखने के लिए उपयोग में आने वाला रंजक ऑरसिन इसी से बनता है।

अम्ल-क्षार सूचक लिटमस *रोसेला टिंक्टोरिया* से बनता है। इनका उपयोग हवा में वायु प्रदूषकों, विशेषकर सल्फर डाईऑक्साइड, की मात्रा की जाँच करने में भी किया जाता है। क्योंकि इसकी अधिकता से ये मर जाते हैं। अतः शहरों और उद्योगों के आसपास इनकी अनुपस्थिति हवा में प्रदूषण की मात्रा बताती है। जैसे-जैसे प्रदूषण बढ़ता है वैसे-वैसे पर्यावरण में इनकी संख्या कम होती जाती है। इस विषय पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो. डी.एन. राव (D.N. Rao) ने विश्वस्तरीय शोधकार्य किया है।

✦✦

किशोर पँवार

किशोर पँवार पेशे से शिक्षक हैं। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उज्जैन, शाजापुर और मन्दसौर ज़िले के ग्रामीण अंचल में हुई। विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन से स्नातक और स्नातकोत्तर के बाद उन्होंने वायु प्रदूषण एवं पेड़-पौधों पर इसके प्रभावों पर शोध कार्य किया।

उनके शोध पत्र विभिन्न राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। वे लोक रुचि विज्ञान पर भी लगातार लिखते हैं। उनकी किताबें – *पेड़-पौधों का अनोखा संसार*, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली से व *बिन पत्ती सब सून एवं फूल से बीज तक*, एकलव्य से प्रकाशित हुई हैं। स्कूल विज्ञान शिक्षण में रुचि रखने वाले श्री पँवार फिलहाल इन्दौर के होलकर विज्ञान महाविद्यालय के बीज तकनीकी विभाग में विभागाध्यक्ष हैं।

सम्पर्कः **किशोर पँवार**
142 ग्रेटर वैशाली, अन्नपूर्णा रोड, इन्दौर (मध्यप्रदेश) फोनः 0731-248 0374

भारत जमरा

भारत जमरा ने होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर से वनस्पति शास्त्र में स्नातकोत्तर की पढ़ाई की है। वे शौकिया चित्रकार हैं। उनके चित्र भारत भवन, भोपाल व अखिल भारतीय कालिदास समारोह में पुरस्कृत हुए हैं।

एकलव्य

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो पिछले कई वर्षों से शिक्षा एवं जनविज्ञान के क्षेत्र में काम कर रही है। एकलव्य की गतिविधियाँ स्कूल में व स्कूल के बाहर दोनों क्षेत्रों में हैं।

एकलव्य का मुख्य उद्देश्य ऐसी शिक्षा का विकास करना है जो बच्चे व उसके पर्यावरण से जुड़ी हो; जो खेल, गतिविधि व सृजनात्मक पहलुओं पर आधारित हो। अपने काम के दौरान हमने पाया है कि स्कूली प्रयास तभी सार्थक हो सकते हैं जब बच्चों को स्कूली समय के बाद, स्कूल से बाहर और घर में भी, रचनात्मक गतिविधियों के साधन उपलब्ध हों। किताबें तथा पत्रिकाएँ इन साधनों का एक अहम हिस्सा हैं।

पिछले कुछ वर्षों में हमने अपने काम का विस्तार प्रकाशन के क्षेत्र में भी किया है। बच्चों की पत्रिका *चकमक* के अलावा *स्रोत* (विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स) तथा *शैक्षणिक संदर्भ* (शैक्षिक पत्रिका) हमारे नियमित प्रकाशन हैं। शिक्षा, जनविज्ञान एवं बच्चों के लिए सृजनात्मक गतिविधियों के अलावा विकास के व्यापक मुद्दों से जुड़ी किताबें, पुस्तिकाएँ, सामग्री आदि भी एकलव्य ने विकसित एवं प्रकाशित की हैं।

वर्तमान में एकलव्य मध्य प्रदेश में भोपाल, होशंगाबाद, पिपरिया, हरदा, देवास, इन्दौर, उज्जैन, शाहपुर (बैतूल) व परासिया (छिन्दवाड़ा) में स्थित कार्यालयों के माध्यम से कार्यरत है।

इस किताब की सामग्री एवं सज्जा पर आपके सुझावों का स्वागत है। इससे आगामी किताबों को अधिक आकर्षक, रुचिकर एवं उपयोगी बनाने में हमें मदद मिलेगी।

सम्पर्कः books@eklavya.in
ई-10, शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462016